RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. /261 / भोपाल / 2015-17 प्रकाशन तिथि: 24 दिसम्बर 2014

बाल विज्ञान पत्रिका जनवरी 2015

चकमक

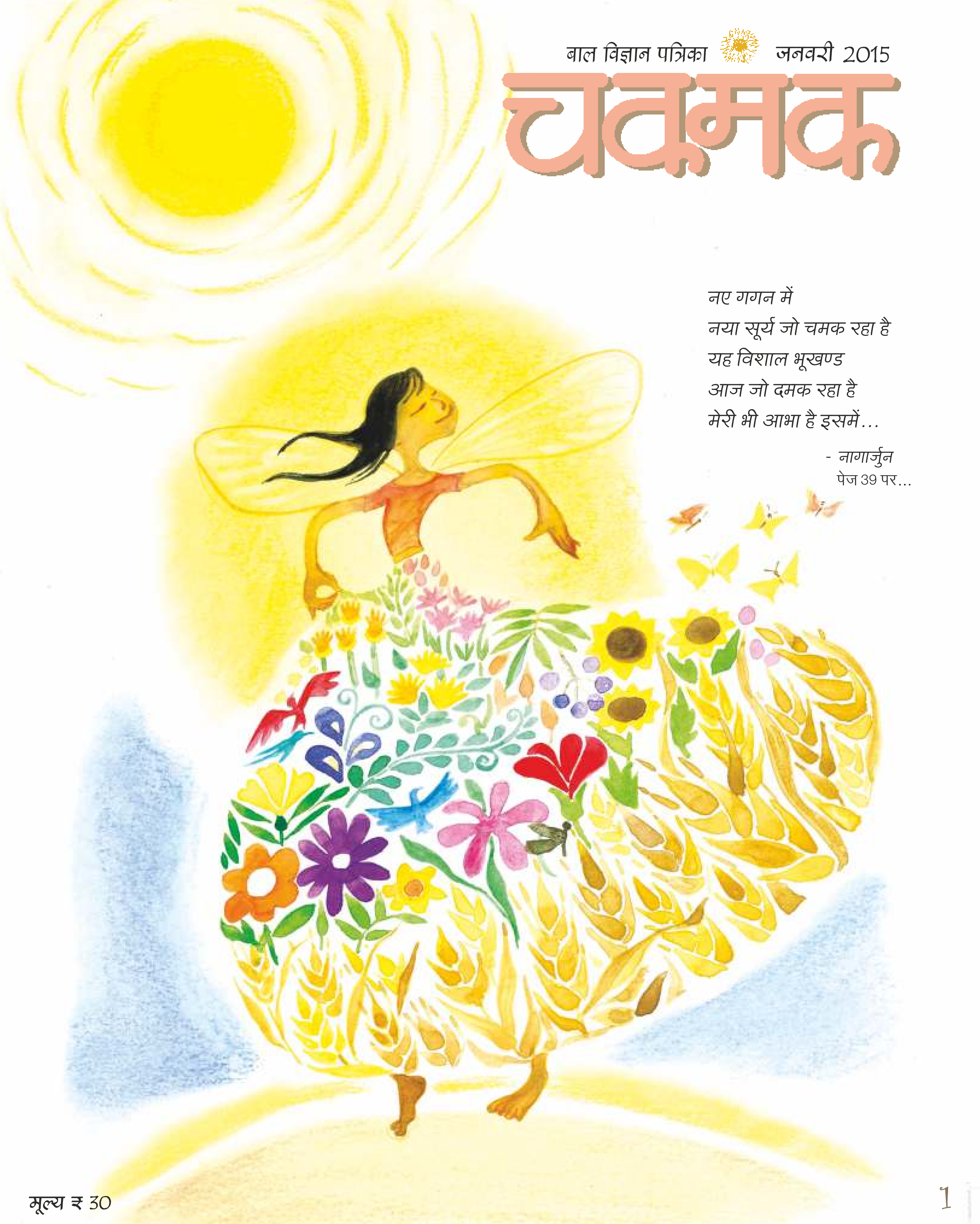

नए गगन में
नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखण्ड
आज जो दमक रहा है
मेरी भी आभा है इसमें...

- नागार्जुन

पेज 39 पर...

मूल्य ₹ 30

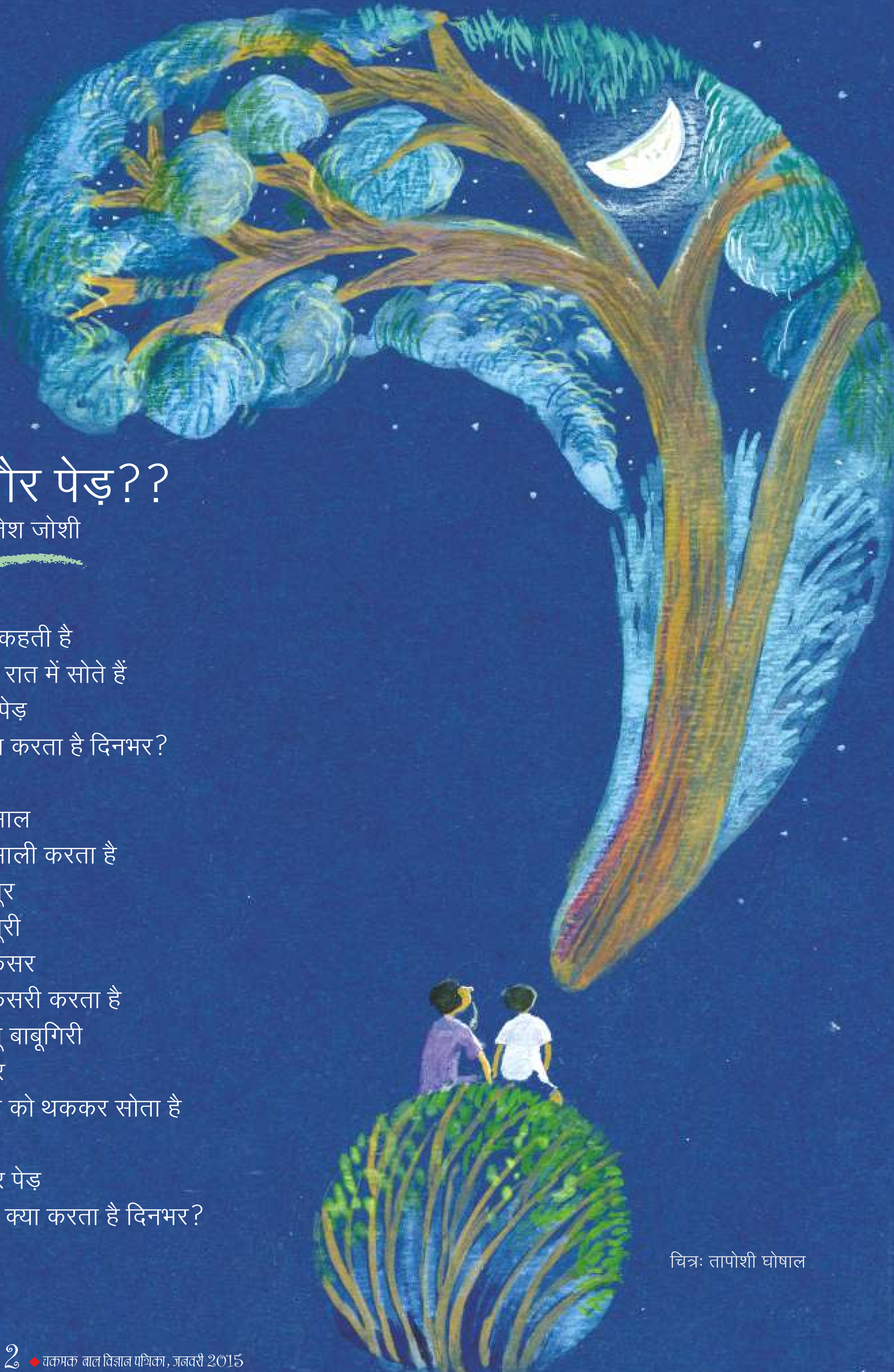

और पेड़??

राजेश जोशी

माँ कहती है
पेड़ रात में सोते हैं
तो पेड़
क्या करता है दिनभर?

हम्माल
हम्माली करता है
मजूर
मजूरी
अफसर
अफसरी करता है
बाबू बाबूगिरी
और
रात को थककर सोता है

और पेड़
पेड़ क्या करता है दिनभर?

चित्रः तापोशी घोषाल

बाल विज्ञान पत्रिका

चकमक

अंक 340 जनवरी 2015

2 और पेड़?/ राजेश जोशी

4 बोली रंगोली/ गुलज़ार

5 अक्ल का तुम्बा

6 प्रकाश/ अरूण कमल

9 कहानी से भरे पत्ते

10 सुनो, दर्ज़िन/ बंशीलाल परमार

12 रंगों का जोड़/ रमा चारी

16 गधा और घोड़ा/ चन्दन यादव

17 हाजी-नाजी/ स्वयं प्रकाश

18 बचपन की कहानी/ उर्मिला पँवार

24 रास्ते जो रामकुमार ने ढूँढे.../ प्रयाग शुक्ल

28 मेरा पन्ना

30 मगरमच्छों का बसेरा/ जसबीर भुल्लर

33 माथापच्ची

34 तारों का जन्मना/ न्यूरी एम बुन्गी

36 एक प्रयोग/ विवेक मेहता

40 एक ही हाण्डी के चटपटे.../ दिलीप चिंचालकर

42 न बोले तुम.../ इन्द्राणी रॉय

43 धूप/ रमेश तैलंग

44 चित्रपहेली

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स
के वित्तीय सहयोग से विकसित

आवरण चित्र
तापोशी घोषाल

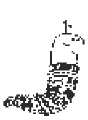

हाशिए के चित्र
विदुषी यादव

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी
मिताली अहीर

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

वितरण
झनकराम साहू

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव

एक प्रति :	30.00	-	व्यक्तिगत
	50.00	-	संस्थागत
वार्षिक :	300.00	-	व्यक्तिगत
	500.00	-	संस्थागत
तीन साल :	800.00	-	व्यक्तिगत
	1350.00	-	संस्थागत
आजीवन :	4000.00	-	व्यक्तिगत
	6000.00	-	संस्थागत

सभी डाक खर्च हम देंगे।
चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

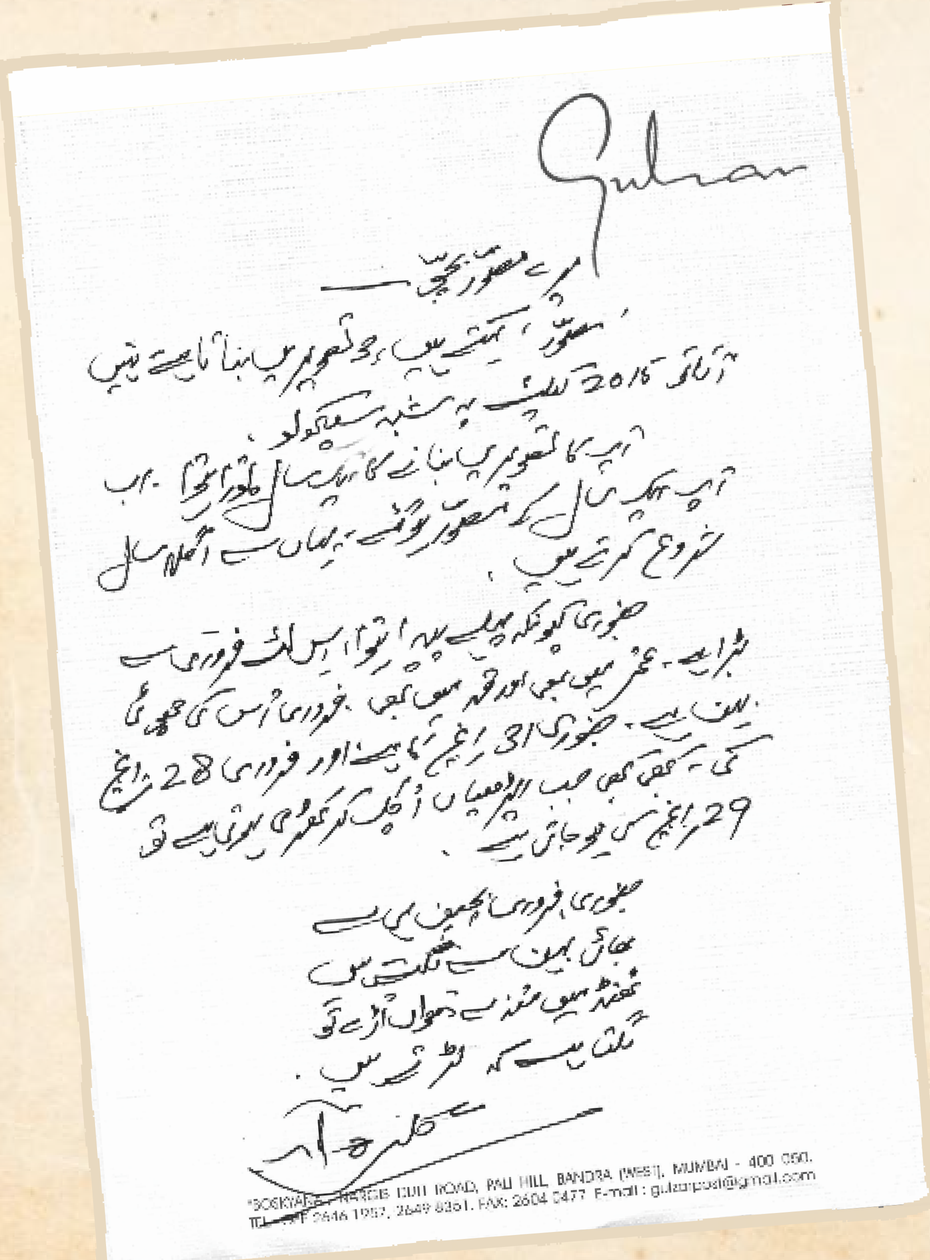

मेरे मुसव्विर बच्चो...

"मुसव्विर" उसे कहते हैं जो तस्वीरें बनाता है। नहीं आता, तो 2015 के लिए यह शब्द सीख लो।

आपका तस्वीरें बनाने का एक साल पूरा हुआ। अब आप एक साल के मुसव्विर हो गए। यहाँ से अगला साल शुरू करते हैं।

जनवरी क्योंकि पहले पैदा हुई, इसलिए फरवरी से बड़ी है। उम्र में भी और कद में भी। फरवरी उसकी छोटी बहन है। जनवरी 31 इंच की है और फरवरी 28 इंच की। कभी-कभी जब वो एड़ियाँ उचककर खड़ी होती है तो 29 इंच की हो जाती है।

जनवरी, फरवरी, बचपन ही से
बहन-भाई से लगते हैं
ठण्ड में मुँह से धुआँ उड़े तो
लगता है कि लड़ते हैं!

\- गुलज़ार

बोलीरंगोली

दोस्तो,

इस बार दो कविताएँ दे रहे हैं। एक फरवरी के लिए और दूसरी मार्च के लिए।

बारह महीने बाद इस घर की
नम्बर प्लेट बदलती है
पता-वता रहता है वही
पर घड़ी दुबारा चलती है

फरवरी की इस कविता के चित्र 14 जनवरी तक भेज सकते हो।

और मार्च की कविता के चित्र 10 फरवरी तक। ये रही मार्च की कविताः

जनवरी, फरवरी, बचपन ही से
बहन भाई से लगते हैं
ठण्ड में मुँह से धुआँ उड़े तो
लगता है कि लड़ते हैं!

पता तो तुम्हें मालूम है हीः
सम्पादक - चकमक
ई-10, शंकर नगर, बीडीए क़ॉलोनी
शिवाजी नगर, भोपाल -16
फोनः 094250 10115

अक्ल का तूम्बा

कहते हैं कि एक बार अकबर के पास ईरान के बादशाह ने एक सन्देश भिजवाया – सुना है आपके पास नवरत्न हैं। अगर थोड़ी-सी अक्ल भेज दें, तो बड़ी कृपा होगी। अब अक्ल भेजे कौन? अन्त में अक्ल भेजने का काम बीरबल को मिला। बीरबल ने तीन ऐसे घड़े बनवाए जिनका मुँह बिलकुल सँकरा था और आकार काफी बड़ा। फिर उसने बढ़िया किस्म का तूम्बे का बीज मँगाकर उगाया। जब उसमें फल लग गए तो एक-एक फल उनमें डाल दिया। जब वे फल बढ़कर पूरा तूम्बा बन गए तो बीरबल ने उन्हें काट लिया और घड़ों का मुँह बन्द करके उन्हें ईरान के बादशाह के पास सन्देश भिजवाया कि इन घड़ों से अक्ल निकाल लें और घड़े वापस भेज दें। ईरान का बादशाह पहले तो यही न समझ पाया कि आखिर कैसे इतने बड़े तूम्बे इन घड़ों में कैसे जा सके होंगे? थोड़ी देर बाद इस पहेली का अर्थ शायद वह समझ गया। और अपनी बेवकूफी पर बहुत हँसा।

चित्रः तनुश्री रॉय पॉल

पहेली

दुइ मुँह छोट, एक मुँह बड़ा।
आधा मानुष लीले खड़ा।
बीचों-बीच लगावे फाँसी,
नाम सुनो तो आवे हाँसी।

प्रकाश

अरुण कमल

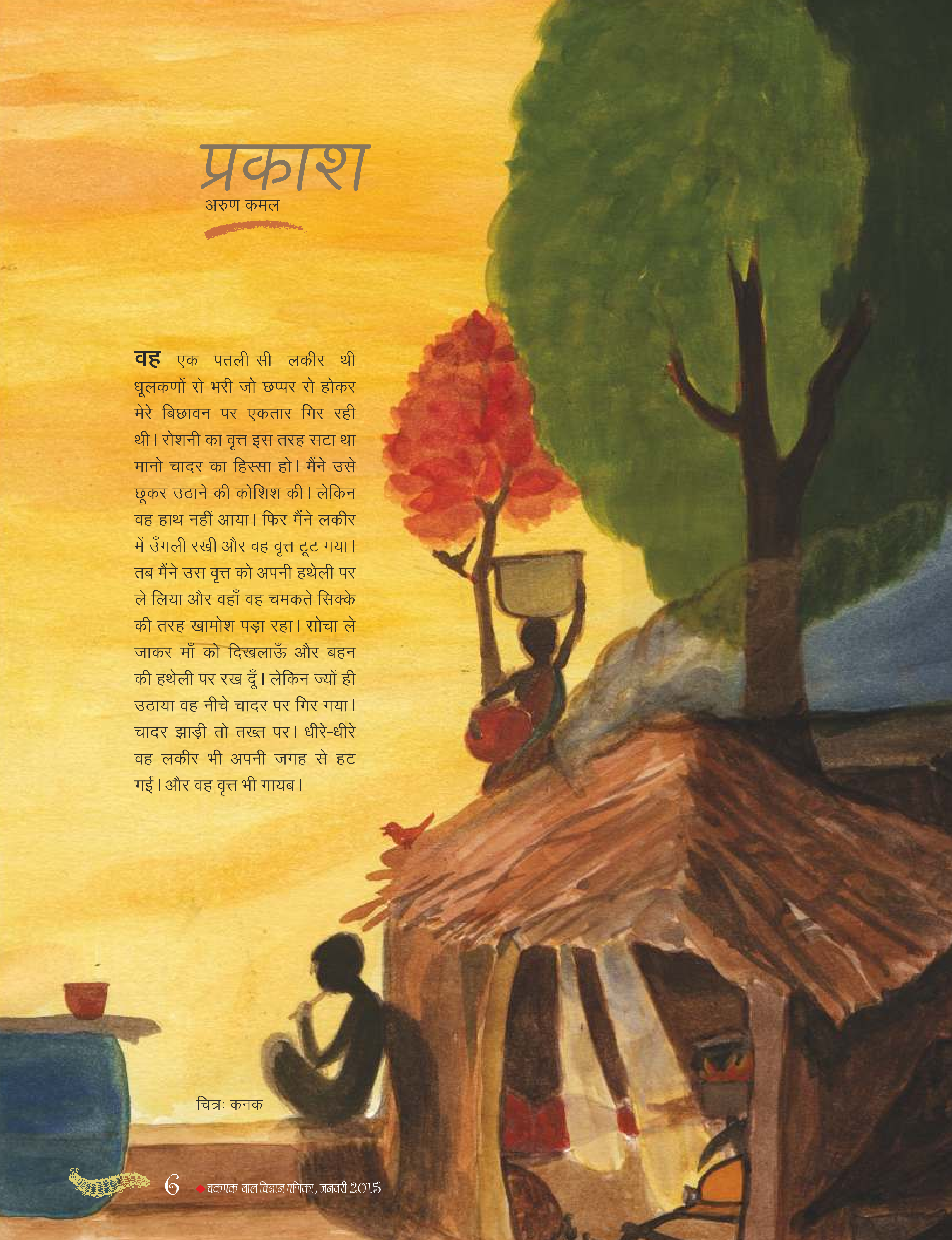

वह एक पतली-सी लकीर थी धूलकणों से भरी जो छप्पर से होकर मेरे बिछावन पर एकतार गिर रही थी। रोशनी का वृत्त इस तरह सटा था मानो चादर का हिस्सा हो। मैंने उसे छूकर उठाने की कोशिश की। लेकिन वह हाथ नहीं आया। फिर मैंने लकीर में उँगली रखी और वह वृत्त टूट गया। तब मैंने उस वृत्त को अपनी हथेली पर ले लिया और वहाँ वह चमकते सिक्के की तरह खामोश पड़ा रहा। सोचा ले जाकर माँ को दिखलाऊँ और बहन की हथेली पर रख दूँ। लेकिन ज्यों ही उठाया वह नीचे चादर पर गिर गया। चादर झाड़ी तो तख्त पर। धीरे-धीरे वह लकीर भी अपनी जगह से हट गई। और वह वृत्त भी गायब।

चित्रः कनक

सूरज उगने के बहुत पहले आसमान जस्ते के रंग का हो जाता है और धीरे-धीरे पेड़, मैदान, घर, गाएँ, लोग-बाग सब उठने लगते हैं। आसमान में चिड़ियों की लतर झप से निकल जाती है। यह प्रकाश ही है जो सबको जगाता है। जो सारी सृष्टि को खोदकर निकालता है। धरती के भीतर से। फिर सूरज का गोला उठता है। लाल। लालिमा पसरती हुई गुम हो जाती है नीलिमा में। चारों तरफ प्रकाश फैल जाता है। आज तक मैंने प्रकाश को, अकेले प्रकाश को नहीं देखा। प्रकाश कभी भी अकेले नहीं आता। वह सबको लेकर आता है। प्रकाश हवा की तरह है जो बस है और चारों तरफ है। लेकिन जो पकड़ के बाहर है। पानी भी पकड़ में नहीं आता। लेकिन गीलापन रह जाता है उँगलियों के गस्सों में। हवा की कोई परछाईं नहीं होती। जबकि प्रकाश हर वस्तु को उसकी निजी परछाईं देता है। जो उसकी अपनी है। कभी-कभी सोचता हूँ अगर मेरी परछाईं कहीं गुम हो जाए तो? दोपहर को मेरी परछाईं मेरे पैरों के नीचे दब जाती है और मेरे साथ-साथ चलती है। धीरे-धीरे परछाईं का गाढ़ापन कम होने लगता है। सूरज फिर लाल होता है। गोल। इतना गोल कि वह अब और गोल न हो सके। प्रकाश की तेज़ी कम होने लगती है। सब कुछ दिखता तो है, लेकिन उनके कोण, मोड़, घुमाव कम होने लगते हैं। प्रकाश अपने अंग सिकोड़ने लगता है। अँधेरा और प्रकाश एक-दूसरे में समाने लगते हैं। तभी एक तारा फूटता है आसमान को छेदता। और प्रकाश की एक डोर मुझ तक आती है — बहुत-सी डोरें। आसमान जगमग करने लगता है। ज़्यों सारा प्रकाश धरती से उठकर ऊपर आसमान में छितर गया हो। लेकिन वह तो सचमुच प्रकाश है। प्रकाश की बूँद। किसी पर पड़ता हुआ प्रकाश नहीं। खुद को प्रकाशित करता प्रकाश। और साफ आसमान में चन्द्रमा उगता है। धीरे-धीरे रोज़ एक-एक कतरा बढ़ता हुआ। यह भी तो प्रकाश की फाँक है। और पूर्णिमा को पूरा गोल चाँद। यह तो वही वृत्त है जो उस सुबह मेरे बिछावन पर गिरा था। चाँद के चमकते सिक्के के उस पार क्या है? कैसी अजीब बात है कि इस सिक्के का केवल एक ही पहलू है। चाँद से प्रकाश इस तरह आ रहा है जैसे कोई पानी का चश्मा हो। धान के खेत में मेड़ के पास घास और जल में चन्द्रमा। पेड़, घर, मैदान, छप्पर पर बिल्ली और बँधी हुई गाएँ और पुआल के ढेर सब कुछ-कुछ, कुछ दूर तक दिख रहे हैं। फिर प्रकाश की धूल। पेड़ों की गहरी छायाएँ। धरती में खुदी हुई। गहरी। भारी। कितनी खामोश हैं। पक्षी भी सो रहे हैं। मछलियाँ जाग रही हैं। एक गुमसुम हलचल। प्रकाश उसी तरह चारों तरफ फैल रहा है जैसे तलवों के नीचे रेत में पानी।

पौ फटती है। और भोर। सुबह। दिन। दोपहर। शाम। रात। प्रकाश कभी थकता नहीं। हमेशा काम करता रहता है। कहीं न कहीं। खूब अँधेरी रात में, अमावस्या को भी, घने अँधकार को प्रकाश का एक वलय घेरे रहता है। नदी चमकती है। बैलों की आँखें हरी-हरी चमकती हैं। जुगनू प्रकाश को कन्धे पर बिठाए चलता रहता है। नीला। लाल। पीला। समुद्र में मूँगों के द्वीप चमकते हैं भीतर। सैंकड़ों रंगों में। पानी में चटुल मछलियाँ चमकती हैं।

जब आसमान बादलों से भर जाता है और चन्द्रमा ढँक जाता है, तारे दब जाते हैं तब तड़ित की एक कौंध सब कुछ को एक लपक में उठाती अस्त हो जाती है। इतनी बिजलियों के आसमान पर आड़े-तिरछे हस्ताक्षर। जब विद्युत-शक्ति नहीं थी, जब लालटेन, ढिबरी और दीया भी नहीं था। जब चूल्हे में आग भी बुझ जाती थी तब यही प्रकाश — चाँद, तारों-तड़ित का प्रकाश रास्ता दिखाता था। ध्रुवतारा प्रकाश का घर और स्थायी पता।

आदमी अँधेरे से डरता है। उसने आग बचा कर रखी। पत्थरों को रगड़कर प्रकाश निकाला। अग्नि तो ताप भी है और प्रकाश भी। लेकिन हर तप्र वस्तु में प्रकाश नहीं होता जैसे लोहे की गर्म सलाख — जब तक वह तपकर लाल दिप न हो। धीरे-धीरे आदमी ने दीए से लेकर इतने उपकरण बना लिए। और अब प्रकाश हमारी उँगली के पोर पर है। बोलो, प्रकाश और प्रकाश हाज़िर है। लेकिन यह सारा प्रकाश प्रकृति से ही तो आता है। सूर्य, चन्द्रमा, नदी, कोयला, परमाणु — सब में प्रकाश है।

(शेष भाग पेज 15 पर)

कहानी से भरे पत्ते...

ये हैं ओमेद असादी की कलाकृतियाँ। असादी मैनचेस्टर, लन्दन में रहते हैं। एक दिन अपनी पत्नी के साथ बाग में घूमते हुए इन्हें कुछ पत्तियाँ दिखीं। खूबसूरत मोटी पत्तियाँ। वे उन्हें उठाकर घर ले आए। और किताबों के पन्नों में दबा दिया। कुछ समय बाद कागज़ की कलाकृतियों की एक प्रदर्शनी देखते हुए इन्हें उन पत्तियों का ख्याल आया। उन्होंने सोच लिया कि वे उन पत्तियों को एक नई ज़िन्दगी देंगे। असादी ने यह बात अपनी पत्नी इलहाम फारसी को बताई। इलहाम लघुचित्र बनाती हैं। उन्होंने इस विचार को सराहा और उन्हें पत्तियों को तराशना सिखाया। साल भर तक असादी रोज़ाना दो-तीन घण्टों तक इसका रियाज़ करते रहे। आज उनकी तराशी पत्तियों में कितने ही पशु-पक्षी, खूबसूरत नज़ारे, जानी-मानी हस्तियाँ साँस लेती दिखती हैं। और इस कमाल के लिए वे महज़ तीन चीज़ें इस्तेमाल करते हैं – पैनी छुरी, सुई और एक लैंस। एक पत्ती की नक्काशी में एक-दो दिन से एक महीना तक लग जाता है। नक्काशी करने के बाद वे पत्तियों को कागज़ पर चिपका देते हैं।

वे कहते हैं कि लोगों को इसमें खूबसूरती दिख सकती है, पर मुझे तो एक कहानी दिखती है...

स्रोतः रूथ, दिनेश रस्तोगी

दो फुट ऊँचा आम का पौधा

सुनो, दर्ज़िन!

बंशीलाल परमार

मेरे घर एक छोटा-सा बगीचा है। गमलों में उगा-पला बगीचा। इसमें तरह-तरह के पौधे लगे हैं। मेरी पत्नी ने इसे सँवारा है। एक गमले में तो उन्होंने आम का पौधा भी लगाया।

जब भी पौधों को आत्मीयता से रोपा जाता है तब ऐसे-ऐसे अदृश्य फल आते है जो हमारी कल्पना से परे हैं। एक दिन मेरी पत्नी पौधों को पानी दे रही थीं। उन्होंने देखा कि उसी आम के कुछ पत्ते सिले हुए हैं। मैंने भी उन्हें देखा। पत्तों को बड़े करीने से सिलकर एक ट्यूब जैसा आकार दिया गया था। इस ट्यूब में नारियल की जटा, पंख, कई धागों जैसी चीज़ें जमा थीं। मैं जैसे ही वहाँ से हटा कि देखता हूँ कि एक छोटी-सी चंचल चिड़िया आम के पौधे पर आ बैठी। फिर उसने उस घोंसले को बुनना शुरू कर दिया। उसने मेरे घर को इस लायक समझा – इस बात ने मुझे खुशी से भर दिया।

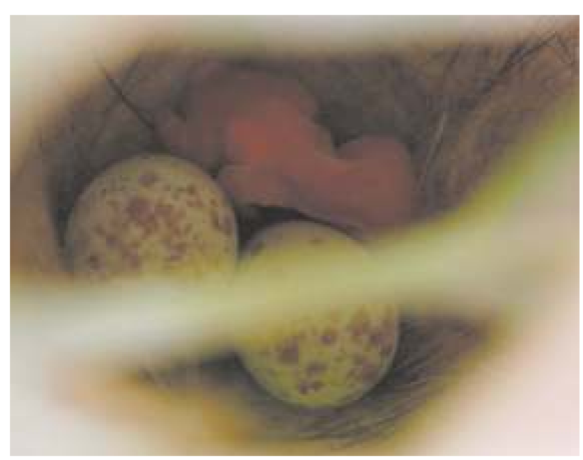

बच्चे पालने की कुशलता के मामले में मनुष्य की श्रेष्ठता के सारे भ्रम चकनाचूर हो चले थे।

तब ऐसे-ऐसे अदृश्य फल आते हैं जो हमारी कल्पना से परे हैं।

हमने तय किया कि इस तरफ अब आवाजाही कम कर देंगे। इसलिए भी कि कहीं दर्ज़िन अपना इरादा न बदल दे। एक खिड़की ठीक इसी गमले के ऊपर खुलती थी। बस यहीं से हम उसके घोंसले में झाँकते रहते। एक दिन मेरी पत्नी जब पौधों को पानी पिला कर लौटीं तो पता चला कि घोंसले में 3 अण्डे आ गए हैं। मेरी खुशी का ठिकाना न रहा। अण्डे दिए हैं यानी अब दर्ज़िन कुछ दिनों तो यहाँ रहेगी ही। हम दोनों ने कैलेण्डर में 24 जून तारीख पर एक घेरा लगा दिया।

हम दोनों के सूने घर में उनके आने को क्या कहें.....लगा जैसे हम अकेले नहीं हैं। जब दर्ज़िन घोंसले से दूर होती तो कभी-कभी उसके घोंसले के चित्र ले लेता। घोंसले में उसने 2-3 सूखे पत्ते ढक्कन की तरह रखे थे। शायद दुश्मनों से बचने के लिए। खिड़की से देखता रहता कैसे वो पत्तियों में घुसकर अण्डे सेने के लिए उस बेहद सँकरे घोंसले में समा जाती। घोंसले से उसका सिर बाहर झाँकता रहता। घोंसले को बार-बार देख आने का मन करता रहता। पर एक डर भी बना रहता कि कहीं दर्ज़िन इस छेड़छाड़ से घोंसला छोड़ कहीं चली न जाए।

तीन अण्डों से बच्चे आने का इंतज़ार मन में भरा रहता। कितने दिन और लगेंगे? मुझे कुछ पता नहीं था। जैसे-जैसे दिन गुज़रते जाते हमारा इंतज़ार बढ़ता जाता। फिर वह दिन भी आया। एक अण्डे से एक बच्चा बाहर आ गया था। तारीख थी 4 जुलाई। बच्चा हिल-डुल नहीं रहा था। इस बात ने मन को आशंकाओं से भर दिया। दूसरे ही दिन यानी 5 जुलाई को बाकी के दो बच्चे भी बाहर निकल आए। उनमें भी कोई हलचल न थी। फिर बच्चों को चुग्गा देने का सिलसिला शुरू हुआ। दर्ज़िन के जोड़े का एक पक्षी भोजन लाता और बच्चों को खिलाता। दूसरा आसपास के पक्षियों को उलझाए रखता। सुबह से शाम हो जाती। पर दर्ज़िन के जोड़े का चुग्गा लाना और बच्चों को खिलाना जारी रहता। बच्चे पालने की कुशलता के मामले में मनुष्य की श्रेष्ठता के सारे भ्रम चकनाचूर हो चले थे।

मैं चुपचाप घोंसले के, बच्चों के फोटो खींचता रहता और दर्ज़िन अपने काम में लगी रहती। उसे अब मेरे वहाँ होने को लेकर शायद कोई डर नहीं था। शायद वह जान गई थी कि उसे हमसे कोई खतरा नहीं।

एक गैलरी में चित्र ले ही रहा था कि अचानक बच्चे छोटे से घोंसले से बाहर आ गए। मैं घबराया। दर्ज़िन का जोड़ा भी बैचेन हो उठा। उनके स्वर तीखे होते जा रहे थे। मैं दिन भर गैलरी में ही रहा आया। दर्ज़िन का जोड़ा उनको बारी-बारी से खाना खिला रहे थे। बच्चे फुदककर कभी गैलरी के पाइप पर बैठ जाते तो उड़कर कभी नीचे आ जाते। वे उड़ना सीख रहे थे। अब उनके लिए पूरी धरती ही एक घोंसले में बदल चुकी थी। और आज 17 जुलाई थी।

दूसरे ही दिन सुबह पूरा परिवार गायब था। गैलरी खाली थी। घर सूना हो गया था। मन में एक ही बात से ढाढस बँधता था कि एक दिन फिर कोई दर्ज़िन, कोई गौरैया अपना घोंसला बनाने के लिए हमारा घर चुनेगी। चक मक

रंगों का जोड़

रमा चारी

2 और 2 हुए 4, 17 और 5 हुए 22...ऐसी संख्याओं को जोड़ना तो हम पहली-दूसरी कक्षा में सीख लेते हैं। फिर बहुत कुछ जोड़ते रहते हैं। पर क्या संख्याओं के अलावा भी कुछ जोड़ा जा सकता है?

क्या अलग-अलग रंगों को जोड़ा जा सकता है! यानी क्या हम गणना कर सकते हैं कि लाल + हरा =? क्या होगा! हो सकता है तुमने कहीं सुना या पढ़ा हो कि सूर्य का प्रकाश, जो हमें सफेद दिखता है वह सात रंगों से मिलकर बना है। शायद तुमने वह प्रयोग भी किया होगा जिसमें एक बहुरंगी (Multi Coloured) चकती को तेज़ी से घुमाने पर वह सफेद रंग की दिखने लगती है (चित्र 1)। पर अगर उसी चकती में हम कुछ अलग रंग लगा दें तो क्या होगा?

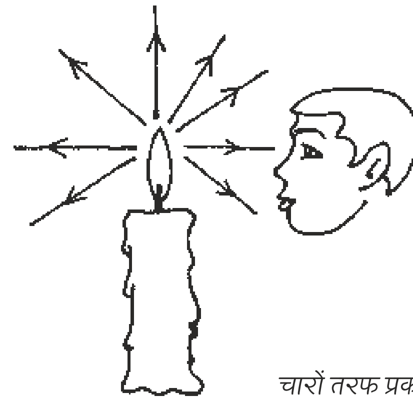

(चित्र 2a)

मोमबत्ती की लौ चारों तरफ प्रकाश फेंक रही है। उसमें से कुछ किरणें हमारी आँखों में जा रही हैं। हमें मोमबत्ती की लौ दिखती है।

पहले तो हम यह समझें कि हम किन रंगों की बात कर रहे हैं। हमें जो कुछ दिखता है वह प्रकाश के कारण दिखता है। किसी प्रकाश-स्रोत (जैसे बल्ब या मोमबत्ती) को जलाने पर उसमें से प्रकाश की किरणें निकलती हैं। ये किरणें जब हमारी आँख की पुतली से अन्दर जाकर दृष्टि-पटल (रेटिना) पर पड़ती हैं तो हमें प्रकाश की अनुभूति होती है (चित्र 2a)। हमें लगता है हम प्रकाश-स्रोत को देख रहे हैं। यही प्रकाश किरणें जब सीधे हमारी आँख में न आकर किसी और वस्तु (जैसे किताब) से टकराकर हमारी आँखों में पहुँचती हैं तो हमें लगता है कि हम किताब को देख रहे हैं (चित्र 2b)। अगर दो अलग-अलग रंग की प्रकाश किरणें एक साथ, एक ही दिशा से हमारी आँखों पर पड़ें तो हमें तीसरा ही रंग दिखाई देता है। मतलब यह कि शायद हमारी आँखें रंगों को जोड़ना जानती हैं। चाहो तो एक प्रयोग कर के देख लो।

(चित्र 1)

<u>स्थिर चकती</u> अलग-अलग खानों में अलग-अलग रंग दिख रहे हैं।

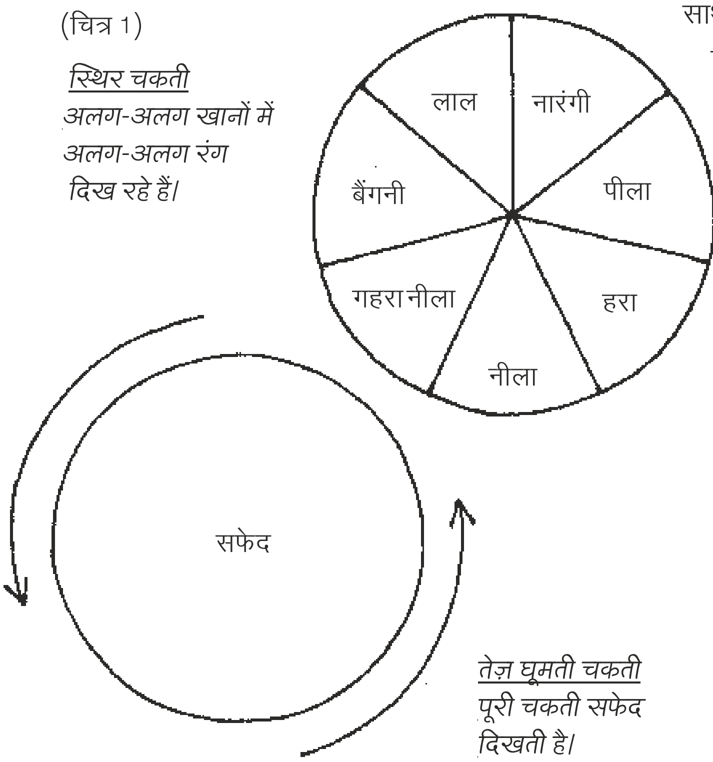

<u>तेज़ घूमती चकती</u> पूरी चकती सफेद दिखती है।

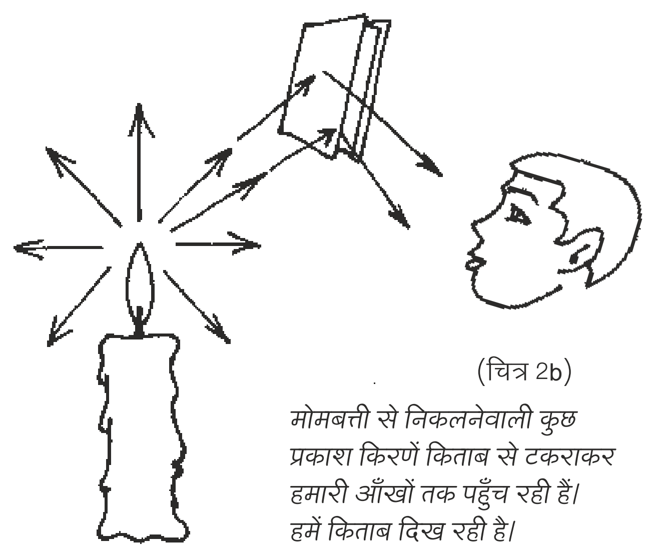

(चित्र 2b)

मोमबत्ती से निकलनेवाली कुछ प्रकाश किरणें किताब से टकराकर हमारी आँखों तक पहुँच रही हैं। हमें किताब दिख रही है।

त्यौहारों आदि के समय कई बार रंग-बिरंगे बल्ब की लड़ियों से रोशनी की जाती है। किन्हीं दो रंगों के बल्ब बिलकुल पास रखकर जलाओ और उससे थोड़ी दूर एक पेपर नैपकिन का परदा लगा दो (चित्र 3)। यह प्रयोग अँधेरे कमरे में करो तो अच्छा रहेगा। पेपर नैपकिन बल्ब से निकलनेवाले प्रकाश को और छितरा देता है। पेपर नैपकिन पर क्या दोनों बल्बों के रंगों के अलावा कोई तीसरा रंग भी दिखा? यही है हमारी आँखों का कमाल!

अब सवाल यह उठता है रंगों को जोड़ने का कुछ फॉर्मूला हो सकता है या हर बार बल्ब जलाने पड़ेंगे! हाँ, इसका एक फॉर्मूला है जो ग्राफ के रूप में चित्र 4 में दिखाया गया है। इसे C I E सिस्टम कहते हैं।

(चित्र 4)

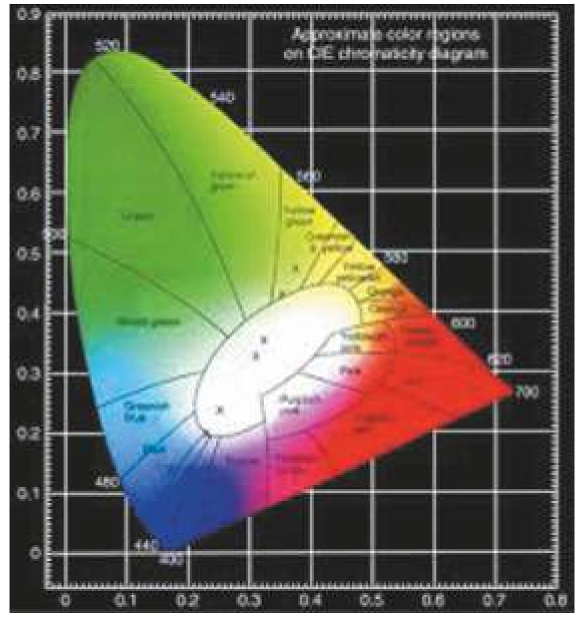

(चित्र 3)

दो अलग-अलग रंग के बल्ब पास-पास रखे हैं। उनकी रोशनी पेपर नैपकिन पर पड़कर मिल रही है। पेपर नैपकिन की दूसरी तरफ से देखने पर कुछ जगहों पर तीसरा ही रंग दिखेगा।

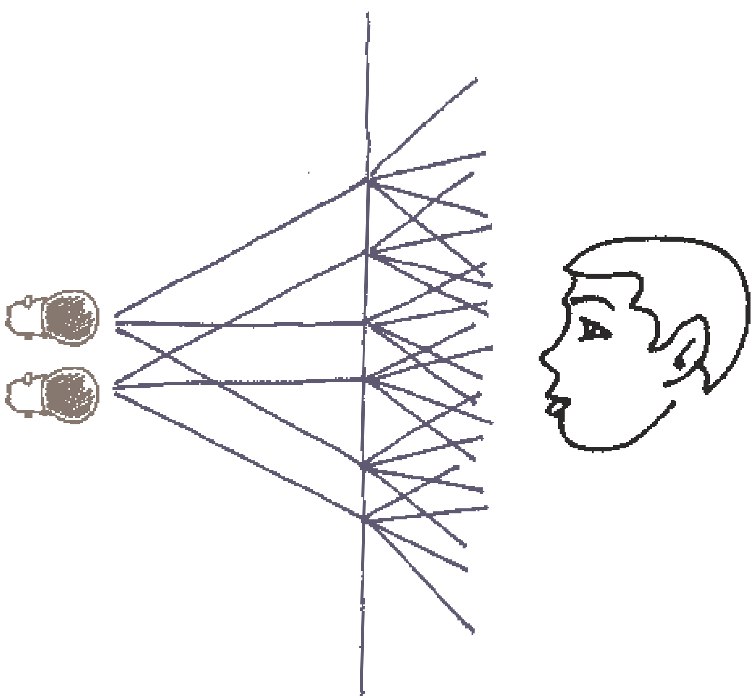

इस चित्र में एक समकोण त्रिभुज के अन्दर घोड़े की नाल जैसी आकृति बनी है। हमें दिखनेवाले सारे रंग इस आकृति की बाहरी सतह (परिधि) या उसके अन्दरवाले बिन्दुओं पर दिखाए जा सकते हैं। चित्र में कुछ रंगों के नाम भी दिए हैं। सबसे दाएँ कोने पर लाल है, उसके ऊपर चलें तो लाल के अलग-अलग शेड्स मिलते जाएँगे। फिर नारंगी, फिर पीला वगैरह। नाल की बाहरी लाइन पर सबसे गहरे रंग होते हैं। जैसे-जैसे हम आकृति के अन्दर आते हैं, रंग हलके होते जाते हैं। और अन्दर के गोले में दिखाए बिन्दु पर सफेद रंग होता है।

इस चित्र के उपयोग से रंगों को जोड़ना बहुत आसान है। एक उदाहरण लेते हैं। परिधि पर कोई दो बिन्दु ले लो – मान लो नीला और पीला लिया (चित्र 5-1)। इन दोनों बिन्दुओं को मिलाती हुई एक रेखा खींच लो। यह रेखा सफेद रंग के बिन्दु से होकर जा रही है। सफेद बिन्दु से नीले बिन्दु की दूरी a और पीले बिन्दु की दूरी b है। अगर हम b मात्रा का नीला प्रकाश और a मात्रा का पीला प्रकाश मिलाएँ तो हमें सफेद रंग मिलेगा। यानी सफेद रंग पाने के लिए सात रंग मिलाना ज़रूरी नहीं है। दो रंग मिलाने से भी काम चल सकता है। अगर हम

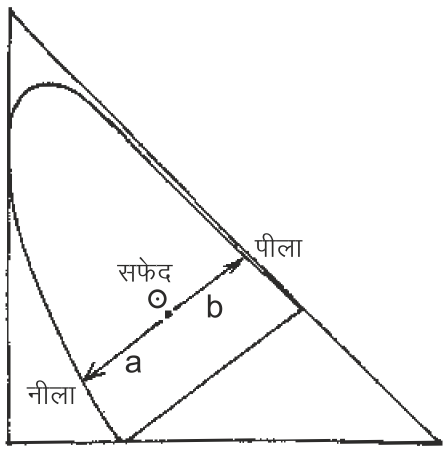

(चित्र 5–1)

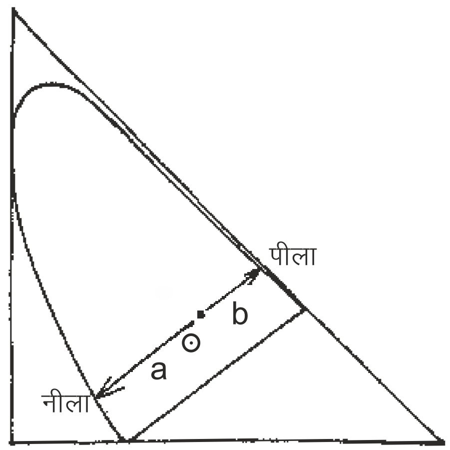

(चित्र 5–2)

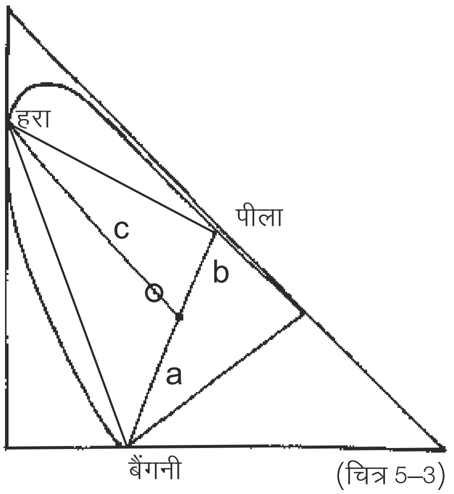

(चित्र 5–3)

नीले प्रकाश की मात्रा b से थोड़ी कम और पीले प्रकाश की मात्रा a से उतनी ही ज़्यादा कर दें तो हमें हलका पीला रंग मिलेगा (चित्र 5-2)। इसी तरह लाल और फिरोज़ी या बैंगनी और हरा जोड़कर भी सफेद पा सकते हैं। हरा और नारंगी जोड़कर पीला, बैंगनी और हरा जोड़कर नीला पाया जा सकता है। इसी क्रम को आगे बढ़ाते हुए हम दो से ज़्यादा रंग भी जोड़ सकते हैं। तीन रंग जोड़ने के लिए पहले कोई दो रंग जोड़ो, फिर उस जोड़ में तीसरा रंग जोड़ो। चित्र 5-3 में b मात्रा का बैंगनी और a मात्रा का पीला जोड़ा गया। इससे हलका गुलाबी रंग मिला। इसमें c मात्रा में हरा रंग जोड़ा जाए तो सफेद बन जाएगा। इसी चित्र में बैंगनी, पीले और हरे बिन्दुओं को जोड़ता हुआ एक त्रिभुज भी दिखाया गया है। इस त्रिभुज में आनेवाले सभी रंग इन्हीं तीन रंगों को अलग-अलग मात्रा में जोड़कर पाए जा सकते हैं।

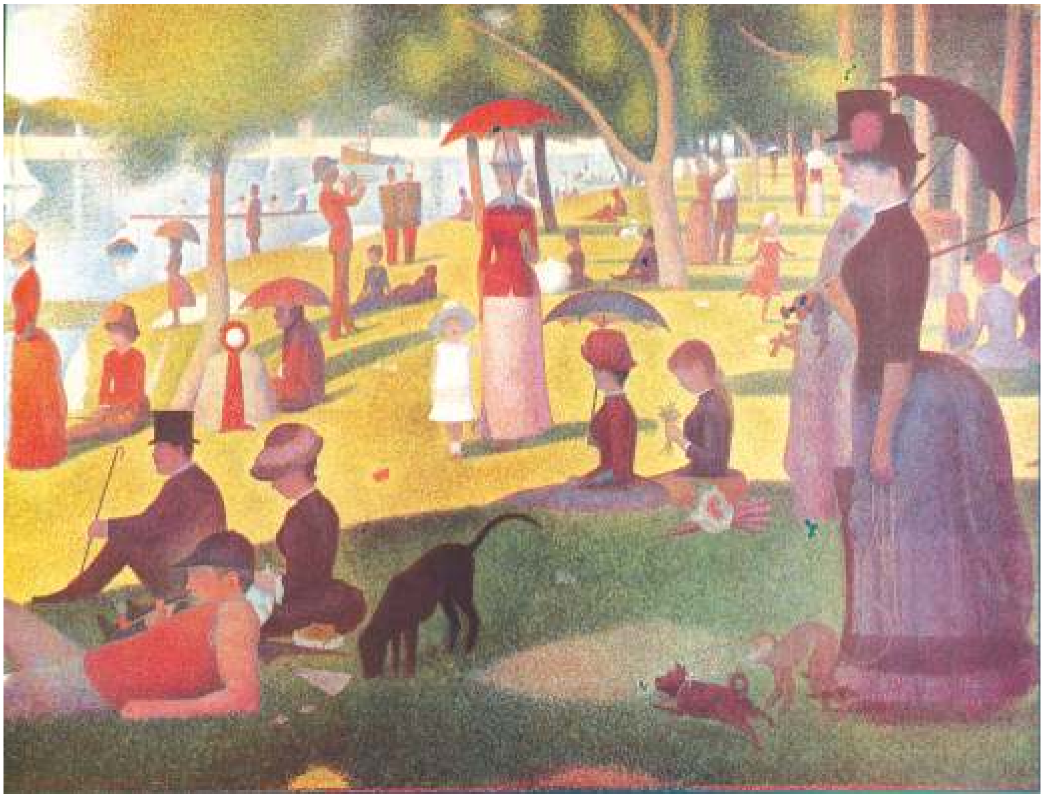

सूरा की बिन्दिया शैली

इस तरह रंगों को जोड़ने का ज्ञान चित्रकारों को बहुत समय से था। चित्रकारी की एक शैली है Pointillism। इसमें चित्र में रंग भरने के लिए पास-पास छोटी बिन्दियाँ लगाई जाती हैं। अगर दो रंगों की बिन्दियाँ लगाई जाएँ तो दूर से तीसरा ही रंग दिखता है। यह तुम खुद भी आज़माकर देख सकते हो। फ्रांस के एक बहुत प्रसिद्ध चित्रकार हुए हैं जिनका नाम सूरा (Seurat) था। उन्हें इस शैली में महारत हासिल थी। यहाँ दिए उनके चित्र को ध्यान से देखो।

वैज्ञानिकों ने भी रंगों को जोड़ने के इस फॉर्मूले का बढ़िया उपयोग किया है। रंगीन टीवी या रंगीन कम्प्यूटर स्क्रीन पर जो तस्वीरें हमें दिखती हैं वे सिर्फ तीन रंगों की मदद से बनाई जाती हैं। यानी तीन रंगों (जैसे लाल, हरा और नीला (या RGB) को अलग-अलग मात्रा में जोड़कर कई रंग दिखा दिए जाते हैं। चित्र 5 में कोई भी तीन रंग के बिन्दु लें। इन तीन बिन्दुओं को जोड़कर जो त्रिभुज बनता है उसके अन्दर के सारे रंग इन्हीं तीन रंगों को अलग-अलग मात्रा में जोड़कर पाए जा सकते हैं। यह त्रिभुज जितना बड़ा होगा उतने ही अधिक प्रकार की रंगतें (शेड) देखी जा सकेंगी। अलग-अलग मॉडल की टीवी में यह एक बड़ा अन्तर होता है। जिस टीवी में बड़ा त्रिभुज बनानेवाले रंग प्रयोग किए जाते हैं उसमें दिखनेवाली तस्वीरें ज़्यादा वास्तविक रंग की दिखती हैं। वैसे चित्र 5 में काला रंग तो है ही नहीं। ऐसा क्यों? याद करो कि हम प्रकाश के रंगों की बात कर रहे हैं तो काले रंग का मतलब हुआ अँधेरा। जहाँ काला रंग चाहिए वहाँ का प्रकाश रोक दो, काला रंग मिल गया।

ये तो हुई रंगों को जोड़ने की बात। पर क्या रंग घटाए भी जा सकते हैं? इसकी चर्चा अगले किसी अंक में...

चकमक

प्रकाश

(पेज 7 का शेष भाग)

अगर प्रकाश न हो तो? अगर एक दिन सूर्य उगना भूल जाए? जैसे पूर्ण सूर्यग्रहण के समय। चाँद भी आलस से सोया रहे। तारे भी रूठ जाएँ। न दीया, न मोमबत्ती, न बिजली के बल्ब। यह प्रकाश ही तो है जो पेड़ों का खाना बनाता है। तब तो पेड़ों की रसोई भी बन्द हो जाएगी। तब हम खाएँगे क्या? इसलिए प्रकाश प्राण है।

एक बार एक बाग में मैं अचानक ठिठक गया। सूरज कहीं नहीं था। लम्बे पेड़ थे। सहसा देखा एक लाल थक्का – दो दीवारों के बीच कोने में पेड़ों से आँख बचाकर कहीं से छनकर एक गहरी लाली बैठी हुई थी। अस्त होते सूर्य का अन्तिम प्रकाश। लाल। ठोस। चारों तरफ गहरी सलोनी छाया थी। प्रकाश इतना ठोस, इतना एकान्त में छुपा हुआ फिर नहीं देखा।

प्रकाश हमें इतना खींचता है कि हम हर चमकती हुई चीज़ को चाहने लगते हैं। यहाँ तक कि टॉफियों को लपेटनेवाले कागज़ भी चमकीले होते हैं। रंग-बिरंगे। शादी विवाह के कपड़े भी, दूल्हे और दूल्हन के। और हम प्रकाश का उत्सव मनाते हैं। दीपावली। चारों तरफ प्रकाश। इतना बेशुमार प्रकाश। सोना, चाँदी, हीरा, जवाहरात – प्रकाश के पत्थर।

मैं इस पृथ्वी को, इस संसार को प्रकाश में, दिन और रात के प्रकाश में रत, भारत, इस तरह देखना चाहता हूँ जैसे पहली बार देख रहा हूँ। और अन्तिम बार। अनेक रंगों से भरा, उज्जवल, सुन्दर और भव्य। "प्रत्येक वस्तु का निज निज आलोक।"

चकमक

दिसम्बर की चित्र पहेली हल

को	ह	रा		गु	ल्ल	क		
य		के	र	ल		स	न्दू	क
ल	प	ट		द	रा	र		रे
	ल		ब	स्ता		त	ब	ला
	क	ल	गी		ग		र	
लो			चा	द	र		ग	
म	स्ज़ि	द			द	ल	द	ल
ड़ी		वा	यु	या	न			की
	रे	त		क		छ	प्प	र

सितम्बर, अक्टूबर-नवम्बर की चित्र पहेली हल

खि	ड़	की		श्या			ढा	बा
ला		म	धु	मा	ल	ती		ल
ड़ी		त			क	न	प	टी
	शा		प	ग	ड़ी		त्त	
मो	म	ब	त्ती			पा	ल	क
ची		बू		बो	त	ल		ल
	अ	ल	मा	री		ना	रं	गी
	ठ		चि		छा		गो	
छ	न्नी		स	रि	या		ली	ची

फु	हा	र		म	खा	ना		उ
ग्गा		सी	ता	फ	ल		बा	जा
	खा	द		ल		ओ	ट	ला
शे	र		स	र	क	स		
	क	ने	र		क		पो	हा
ड			ह	थौ	ड़ी		ट	
ब	र	ग	द			सू	ली	
रा		र		ती	त	र		ठे
		बा	ज़ा	र		त	बे	ला

गधा और घोड़ा

चन्दन यादव

एक गधे ने पहली बार घोड़ा देखा।

उसने घोड़े से पूछा, "तुम इतने तगड़े कैसे हुए? क्या करते हो, खाते क्या हो?"

घोड़े ने कहा, "मैं गधा नहीं, घोड़ा हूँ।"

पर गधे को इस पर विश्वास नहीं हुआ। वो गम्भीरता से बोला, "मुझे लगता है कि तुम गधे ही हो।" सुनकर घोड़ा गुस्से से हिनहिनाया। गधे को घोड़े की आवाज़ अपने से अलग लगी। वह बोला, "मित्र, तुम्हें खुद के बारे में पता नहीं है। तुम्हारी आवाज़ भी बदल गई है। मुझे लगता है, तुम बीमार हो।"

गधे की बात सुनकर घोड़े को गुस्सा आ गया। वह गधे को मारने लपका। गधा जान बचाकर भागा। और हाँफते हुए अपने साथियों के पास पहुँचा। उसने अपने साथियों को बताया कि गधों में कोई बीमारी फैल रही है। इसमें वे खूब बड़े हो जाते हैं। उनकी आवाज़ बदल जाती है, और वे बात-बात पर गुस्सा करते हैं।

चित्रः जोएल गिल

झूठ का शौक

राजे-महराजे अपने सनकीपने के लिए मशहूर हैं। कहते हैं कि एक राजा ने मुनादी करवा दी – मेरे राज में किसी ने झूठ बोला तो उसे जेल में डाल दिया जाएगा। दूसरे देश का एक बन्दा वहाँ आया। उसे झूठ बोलने का शौक था।

पर इस सज़ा का क्या किया जाए? खैर, वह दरबारी के पास गया। दरबान ने उससे कड़क आवाज़ में पूछा, "तुम यहाँ किसलिए आए हो?" उसने बड़े आराम से जबाव दिया, "जेल में रहने।" दरबान मुसीबत में पड़ गया। तुम समझ ही गए होगे कि क्यों?

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

बाज़ार में एक नई अमरीकी मोटरसाइकिल आई थी जो स्टार्ट होते ही पाँच मिनट में सौ की स्पीड पकड़ लेती थी। थी तो वह बहुत महँगी पर नौजवानों में फिर भी बहुत जल्दी लोकप्रिय हो गई थी। नाम था उसका "भूतनी"।

दूसरों की देखादेखी नाजी के बेटे ने भी अब्बा से ज़िद करके एक लाल रंग की भूतनी खरीद ली।

एक दिन नाजी के जी में आई कि भूतनी की सवारी की जाए। जब बेटा चला सकता है तो मैं क्यों नहीं!

नाजी बड़े मज़े से हवा खाते जा रहे थे लेकिन गाड़ी की स्पीड अन्धाधुन्ध बढ़ती जा रही थी। तभी नाजी को सड़क पर अपने दोस्त हाजी दिखे जो अपने पुराने स्कूटर पर थे और उसी दिशा में जा रहे थे जिसमें नाजी जा रहा था।

नाजी अपनी गाड़ी को हाजी की गाड़ी के पास लाए और बोले, "भूतनी चलाई है कभी?"

हाजी ने कोई जवाब नहीं दिया।

दोनों आगे-पीछे हो गए।

थोड़ी देर बाद नाजी फिर हाजी की बगल में आए और बोले, "भूतनी चलाई है कभी?"

हाजी ने कोई जवाब नहीं दिया।

फिर दोनों ट्रैफिक में आगे-पीछे हो गए।

कुछ देर बाद फिर नाजी हाजी की बगल में आए और बोले, "भूतनी चलाई है कभी?"

हाजी ने फिर कोई जवाब नहीं दिया।

कुछ ही दूर आगे चले होंगे कि हाजी ने देखा कि नाजी सड़क पर चित्त पड़े हैं और उनकी मोटरसाइकिल पास ही लुढ़की पड़ी है।

हाजी ने स्कूटर रोका और चिढ़ाते हुए नाजी से कहा, "भूतनी चलाई है कभी?"

दर्द से बिलबिलाते हुए नाजी चिढ़कर बोले, "नहीं चलाई है कभी, इसीलिए तो पूछ रहा था कि इस कम्बख्त के ब्रेक कहाँ हैं?"

चित्रः जोएल गिल

बचपन की कहानी

बचपन में बड़े लोग मुझे दुश्मन लगते थे। वैसे तो ऐसा सभी छोटे बच्चों को लगता है। लेकिन मेरे दुश्मन कुछ अलग किस्म के थे। इनमें से चार सबसे बड़े दुश्मन थे – एक मेरे बाबा, दूसरी मेरी माँ, तीसरा मेरा भाई और चौथे मेरे स्कूल के हेर्लेकर मास्साब। मेरी ज़िन्दगी की बुनियाद इन्हीं चार दुश्मनों के हाथों रखी गई है। आज मैं जो भी हूँ इन्हीं की वजह से हूँ।

उर्मिला पँवार

मराठी से अनुवादः किशोर दरक

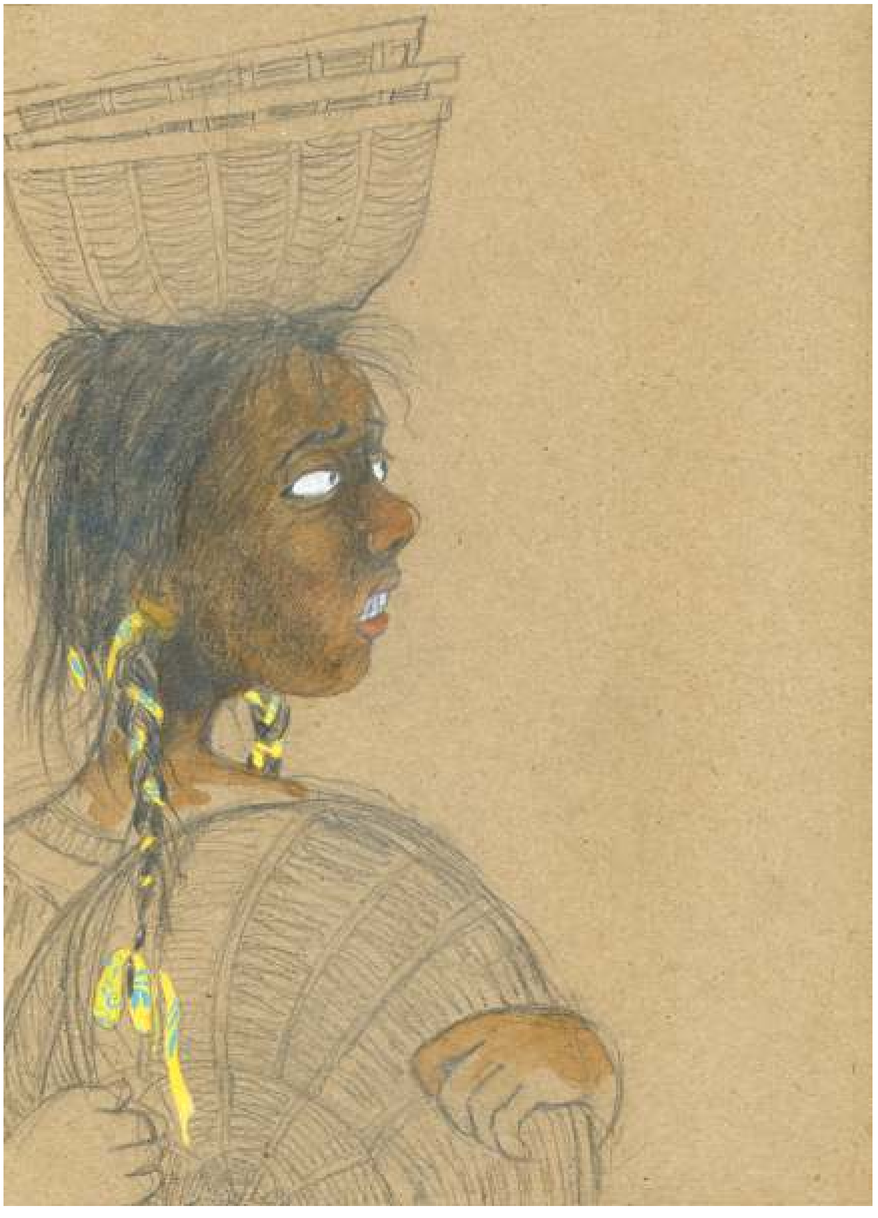

चित्रः तापोशी घोषाल

इनके अलावा और भी लोग मुझे दुश्मन लगते क्योंकि वे हमेशा मुझे दुत्कारते रहते थे। माँ से मेरी शिकायत या मेरे खिलाफ चुगलियाँ करते। या फिर, "ओए, हटो यहाँ से, भागो ऽऽऽ वर्ना हमें छू लोगी" कहकर गुस्सा होते।

खैर, इन छुट-मुट दुश्मनों की बातों को मैंने कभी दिल से नहीं लगाया। लेकिन इन चार दुश्मनों से मेरा रोज़ ही पाला पड़ता। इनमें से दुश्मन नम्बर एक – मेरे बाबा – जल्दी चल बसे और मैं चार के चँगुल से छूटकर तीन के फँदे में अटक गई।

मैं तीसरी में थी जब बाबा चल बसे। मुझे अच्छी तरह से याद है। अगर कोई मुझे उनका चित्र बनाने को कहता तो सिर्फ काले और सफेद रंग की ज़रूरत पड़ती। दुबले-पतले, नाटे कद के, काले रंग के मेरे बाबा सफेद धोती, सफेद कुर्ता, काला कोट और गाँधी टोपी पहनते थे। आँखें हमेशा बाहर निकली हुई होतीं – काली-सफेद आँख। दाँत बिलकुल सफेद। तो काले और सफेद के अलावा किसी रंग की क्या ज़रूरत थी भला?

जैसे समुद्र के किनारे की रेत पर छोटे केंकड़े तेज़ी-से यहाँ-वहाँ भागते रहते हैं, मेरे बाबा भी ऐसे ही चलते। हमेशा यहाँ से वहाँ भागते रहते। धूप हो, बारिश हो या ना हो, उनके हाथ में हमेशा एक काले रंग का छाता रहता। मानो वो छाता नहीं, उनका तीसरा हाथ हो जो हमारी पीठ पर अकसर बरसता।

हाँ, तो गर्दन कटे भूत ने जैसे ही मुझे वेताल के चंगुल में छोड़ा, वो चिल्लाया, “कान पकड़कर खड़ी हो जाओ।”

बाबा उस ज़माने के स्कूल मास्टर थे यानी बच्चों की पिटाई करने में माहिर थे। माहिर नहीं, एकदम शैतान थे। हमारी बस्ती में एक वही पढ़े-लिखे थे – बस सातवीं कक्षा तक। पर पिछड़ी जाति से होने के बावजूद उनका पढ़ा-लिखा होना हमारी जाति के बूढ़ों के लिए काबिले तारीफ था। बाबा हर किसी से कहते रहते, “पढ़ो, लिखो, सिखो, पढ़ाई करो”।

उनकी इस आदत की वजह से एक बार हमारी एक चाची ने उनकी बड़ी फजीहत की। बाबा एक बार उनके घर गए थे और “स्कूल क्यों नहीं जाते हो” कहते हुए अपने भतीजे को पीटने लगे। चाची ने कहा, “मेरा बेटा है, स्कूल जाए या ना जाए, तुमसे मतलब?” पर बाबा नहीं माने। उन्होंने अपने भतीजे को चार-दो तमाचे और जड़ दिए। फिर चाची ने एक रताँबा* काटकर उसकी लाल फाँकें अपने बेटे के पिछवाड़े पर मल दीं और चिल्लाने लगीं, “अरे देखा ऽऽऽ मेरे बेटे को खून जमने तक पिटा रे ऽऽऽ।” फिर क्या, गाँव के बूढ़े-बुज़ुर्ग बाबा से गाली-गलौच करने लगे। और वे डर के मारे घर भाग आए।

बाबा कंजूस तो ऐसे थे कि पूछो मत। खुद के लिए एक फूटी कौड़ी तक खर्च ना करते। होटल में सिंगल चाय नहीं पीते। धोती फट जाए तो सिलकर पहनते। फटी कमीज़ को कोट के अन्दर छिपाते। हम कभी किसी चीज़ के लिए पैसे माँगते तो उन्हें गुस्सा आ जाता। उनकी आँखों की वजह से गुस्से में वे चन्दामामा पत्रिका में बने भूत जैसे लगते।

हमारे घर के पड़ोस में हनुमान का मन्दिर था। यह मन्दिर मेरे लिए बड़ी सुकून की जगह थी क्योंकि जब भी स्कूल जाने का मन नहीं होता, मैं बस्ता लेकर मन्दिर में जम जाती। भगवान से कहती, “भगवान, बाबा को घर मत लाना।”

शायद भगवान ने मेरी सुन ली। मैं तीसरी में थी उस साल बाबा बीमार हुए। माँ कहती थीं उनके पेट में खून का पानी हुआ था। एक बार मैंने उन्हें अस्पताल में देखा। सफेद चादर पर बाबा नहीं दिख रहे थे। किसी दोयजिवा (गर्भवती) औरत की तरह उनका पेट निकल आया था। हम उनके सिरहाने गए तो वे छोटे बच्चों की तरह रोने लगे। माँ से कहा, “बच्चों को पढ़ाना।”

उस दिन लग रहा था कि बाबा मरें नहीं। लगा कि मैं उनसे कहूँ कि मैं स्कूल जाऊँगी, पढ़ूँगी, लिखूँगी लेकिन आप मरना नहीं। लेकिन वे चल बसे। वह शुक्रवार की रात थी। रात भर बाबा की लाश सामने थी। सब लोग जाग रहे थे। अगले दिन शनिचर को स्कूल सुबह होता था। पता नहीं मुझे क्या लगा कि मैंने बस्ता भरा और माय (माँ) से पूछा, “मैं स्कूल नहीं जाऊँ?” इससे पहले और इसके बाद स्कूल जाने की ऐसी बेसब्री मुझमें कभी नहीं हुई थी।

बाबा गए। माय और भी बेचारी दिखने लगी। सोचा, “चलो अच्छा हुआ। अब ये ना तो मुझपे चिल्लाएगी ना स्कूल जाने को कहेगी।” पर ना, बाबा ने जाने से पहले माय को मंत्र जो पढ़वाया था – बच्चों को पढ़ाना। बस्स, फिर क्या कहना! माय से तो बाबा भले ऐसा लगता।

माय भी बाबा की तरह दुबली-पतली पर लम्बी है। रंग उजला और सूरत हमेशा रोती हुई। वो फटे-पुराने लुगड़े-साड़ियाँ पहनती पर घुटनों से ऊपर, चड्डी की तरह। हमारा घर रस्ते से सटा हुआ था। स्कूल के बच्चे जाते-आते दिखते। माय आँगन में बैठकर टोकरियाँ बुनती रहती। सुबह-शाम जब देखो टोकरियाँ, सूपड़े बुनती रहती। बीच में कभी चूल्हे के पास जाकर कुछ छुटर-पुटर करती।

स्कूल के बच्चे कभी-कभार माय की बुनाई देखते खड़े रहते। माय को भी देखते। मुझे बड़ी शर्म महसूस होती। उनकी मायें कैसी सजी-धजी, देवियों जैसी दिखतीं। सुन्दर कपड़े, गहने, मीठी मुस्कान। माय हमेशा गुस्सैल। हमेशा मुझपे चिल्लाती, “इस्कूल जा। पढ़ाई कर।” उसे अक्षरों की बिलकुल समझ नहीं थी। ऊपर से गँवार जैसी बतियाती। पर मिज़ाज होना स्कूल की मास्टरनी का! मैं जब कभी स्कूल के मेलों में पेंसिल या स्केल जैसे कुछ पुरस्कार पाती तो माँ को दिखाती। पर माँ कभी तारीफ नहीं करती। सूखेपन से कहती, “अच्छा है।”

माय कँजूस तो ऐसी कि बाबा को भी पीछे छोड़ दे। खाने में चावल और पानी जैसी पतली दाल बनाती। कभी-

कभार सब्ज़ी हो भी तो इमली के बीज जित्ती। आटे में भुस्सा डालकर रोटियाँ बनाती और साथ में कोलीम या सुकट भूनकर खाने को कहती। तीज-त्यौहार में भी मीठे का नाम न लेती। बस आँसू टपकाती रहती। मेरी स्कूल की सहेलियों की मायें क्या बढ़िया चीज़ें बनातीं। उन्हें टिफिन में भरकर देतीं। मेरे मुँह से लार टपकती पर माय को उससे मतलब न होता।

सजना-सँवरना तो हमें पता ही न था। हफ्ते में एक बार माय कपड़े के पावडर और भरसक गरम पानी से बाल धो देती। बाल सूख जाए तो तेल मलकर कँघी से जूएँ निकालती। फिर बालों की रस्सी जैसी चोटी गूँथती। इत्ता दर्द होता कि आँखों के सामने जुगनू नाचने लगते। चोटी के सिरे पर पुरानी साड़ी के पल्लू का टुकड़ा बाँध देती। मैं अगर आइने में झाँकती तो कहती, "हमेशा-हमेशा आयना काहे देखती हो? सामनेवाले के मुँह को देखो, वो बताए देगा कैसी दिख रही हो।"

माय दिखने में सीधी-सादी भले ही हो पर थी एकदम झूठी, नौटंकीबाज़। कभी एक-आध ग्राहक चिल्लाते हुए आते, "तुझे कुछ टोकरियाँ, सूपड़े बुनने के लिए बोला था। आज तू वह देने वाली थी। तो बनाया क्यों नहीं? चल बयाना के पैसे वापस कर।" ऐसे वक्त माय मुझे बीमार बना देती। गिड़गिड़ाते हुए कहती, "ये मेरी छोटी छोरी बहुत शिक (बीमार) थी। मरेगी या रहेगी ऐसी नौबत आ गई। मुझे टेम (समय) नहीं मिला। पर आज मैं काम कर दूँगी। इस बारी माफी दे दो।" ऐसा कहकर वो रो लेती। असल में मैं बिलकुल ठीक होती।

कभी किसी के यहाँ टोकरियाँ, छबड़ियाँ या सूपड़े पहुँचाने होते तो "धकट्या ऽऽ" (छुटकी) ऐसी मीठी आवाज़ में मुझे बुलाती। सभी भाई-बहनों में मैं सबसे छोटी थी इसलिए वह मुझे धकट्या बुलाती। उसकी आवाज़ सुनते ही मैं अन्दर की बात समझ जाती। कई बार आवाज़ लगाने के बावजूद मैं ना जाती तो पीठ पर हाथ बरसाती। और चुड़ैल जैसी दाँत निकालकर चिल्लाती, "अरी ओ, सिरफ बैठके खाएगी? काम नहीं करेगी? उठ वरना मुँह दाग दूँगी। जा उस फलानी के घर में टोकरियाँ पहुँचा दे।"

जब मैं चीजें पहुँचाने लोगों के घर जाती तो लोग मुझे दरवाज़े के बाहर ही खड़ी रहने को कहते। मेरी लाई चीज़ों पर पानी छिड़ककर उन्हें उठाते। पैसे भी मेरे हाथ पर ऊपर से फेंकते। मानो मेरे हाथ को अगर उनका हाथ लग जाएगा तो जलकर काला हो जाएगा। उस घर में अगर मेरी कक्षा के बच्चे होते तो मेरी हालत मरने से बत्तर हो जाती। फिर मैं तय कर लेती कि माय को सबक सिखाऊँगी। आज स्कूल नहीं जाऊँगी।

बाबा उस ज़माने के स्कूल मास्टर थे यानी बच्चों की पिटाई करने में माहिर थे। माहिर नहीं, एकदम शैतान थे। हमारी बस्ती में एक वही पढ़े-लिखे थे – बस सातवीं कक्षा तक।

लेकिन घर पहुँचते ही माय को मेरे मन की बात पता चल जाती। मेरी हथेली पर गुड़ का टुकड़ा रखकर मीठी आवाज़ में कहती, "इस्कूल जाय आव। फेर चता खाने पैसा दूँगी।" हर बार मुझे उसकी बात का भरोसा होता पर वो बिलकुल झूठी थी। आज नहीं, कल ऐसे कहकर मुझे टालती रहती। मैं अगर पैसों के लिए ज़िद पर अड़ जाऊँ तो वह एकाध तमाचा जड़ देती। मैं भी गुस्से में स्कूल न जाने के तरीके सोचती रहती। स्कूल का नाम लेकर मन्दिर में जा बैठती।

मन्दिर का पुजारी पूजा करने आता। हनुमान को नहलाता। पूजा करता। हमें प्रसाद देता। वह मुझे बहुत पसन्द था। गोरा चिट्टा, राम की संगमरमर की मूर्ति जैसा। काली आँखें, काले बाल। सिर्फ हाफ पेंट पहनता। उसके गोरे बदन पर जनेऊ होती, माथे पर लाल तिलक और मीठी मुस्कान।

एक दिन हम खेल रहे थे और पुजारी पूजा कर रहा था। मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठकर हम प्रसाद की बाट जोह रहे थे। थोड़ी देर में उसने मन्दिर का दरवाज़ा खोला। अन्दर से कोमठी जाती की उगलव्वा नाम की लड़की बाहर आई। सहमी सी...डरी हुई और उसके पीछे पुजारी आया। और प्रसाद दिए बगैर जल्दी में चला गया। न जाने क्यों, उस दिन से उस पुजारी से मुझे डर लगने लगा। सोचा कि माय से पूछूँ कि उगलव्वा क्यों रो रही थी। पर ऐसा पूछने पर मेरी स्कूल न जाकर मन्दिर जाने

की बात माय को पता चल जाती और वो मेरी पिटाई करती। साथ में मेरा दुश्मन नम्बर तीन, मेरा भाई मेरी कुटाई करता।

एक दिन स्कूल जाना टालने के लिए मैंने अपना इकलौता अच्छा फ्रॉक घर के कोने में फटे-पुराने कपड़ों के साथ छिपा दिया। हमेशा की तरह दाल-चावल परोसते हुए माय बोली, "देख इस्कूल की घण्टी बज रही है। जा, जल्दी जा।" स्कूल घर के पास में ही था और ना भी होता तो माय को स्कूल की घण्टी, प्रार्थना बराबर सुनाई देती।

मैंने नाटक शुरू किया, "ऊँ!!! मेरी फराक नहीं मिल रही है।" माय मेरे मन की बात समझ गई और मेरे भाई को बुलाया। वह स्कूल जाने के लिए तैयार हो रहा था। पर रुक गया। दोनो मेरी फ्रॉक ढूँढने लगे। मेरा भाई मुझसे चार साल बड़ा था। मोटा नहीं पर हट्टा-कट्टा था। मैं जितना भी ज़ोर से भागती, मुझे पकड़कर माय के सामने लाने का काम बराबर करता। मुझे लगता कि उसके पैर को कोई कुत्ता काट ले। हाँ, तो दोनों ने मिलकर घर के सारे कोने छान मारे और फटे-पुराने कपड़ों की गठरी से मेरा फ्रॉक ढूँढ लिया। फ्रॉक हाथ में पकड़कर भाई ने कहा, "माय, यह देखो।" माय चिल्लाई, "क्यूँ मुझे तँग करती है?" फिर दोनों ने मिलकर मुझे दो-चार लप्पड़ लगाए। फिर वह फ्रॉक पहनाकर, मुझे कान से पकड़कर भाई स्कूल की तरफ चलने लगा। उस वक्त भाई मुझे "गर्दन कटे भूत" की तरह लग रहा था।

वो गर्दन कटा मुझे क्लास के दरवाज़े तक ले गया और दरवाज़े से ही बोला, "मास्साब, माय ने कहा है इसे क्लास में बैठा लिजिए। कल से देरी नहीं होगी।" इतना कहते हुए मुझे उस खूँखार वेताल के सामने ढकेलकर वो खुद गायब हो गया।

खूँखार वेताल यानी मेरा दुश्मन नम्बर चार – हेर्लेकर मास्साब। मेरे बाबा का ही नमूना। दिखने में भी। बाबा ने अगर कुर्त्ता-पजामा पहना होता तो वे हेर्लेकर ही लगते। फर्क था पर थोड़ा-सा। हेर्लेकर मास्साब कद में थोड़े लम्बे थे और उनकी आँखें लाल थीं। उनकी आँखें देखकर ही बच्चे काँपने लगते, मूत देते।

एक बाबा थे, जो पढ़ाई न करने पर पिटाई करते। हेर्लेकर मास्साब पढ़ाई करने के बावजूद सज़ा देते। जैसे मैं थोड़ा ध्यान देकर पहाड़े वगैरह लिखती तो कहते "चलो, यह बोर्ड साफ करो" "कोने से कूडा उठाकर फेंको" या "बाहर पड़ा गोबर भरकर फेंको"...। मुझे सबसे पीछे बैठने को कहते।

स्कूल में समय से पहुँचना, पेशाब की छुट्टी खत्म होते ही कक्षा में आना जैसी चीज़ों में थोड़ी-सी भी ऊँच-नीच होती तो मेरी खैर नहीं होती। और बच्चों को भी वे पीटते पर ज़रा-सा। हमारी माय ने भी सभी अध्यापकों से कह रखा था कि वे मेरी पिटाई किया करें। पढ़ाई ढंग से होने के लिए पिटाई ज़रूरी है, ऐसा उसका मानना था।

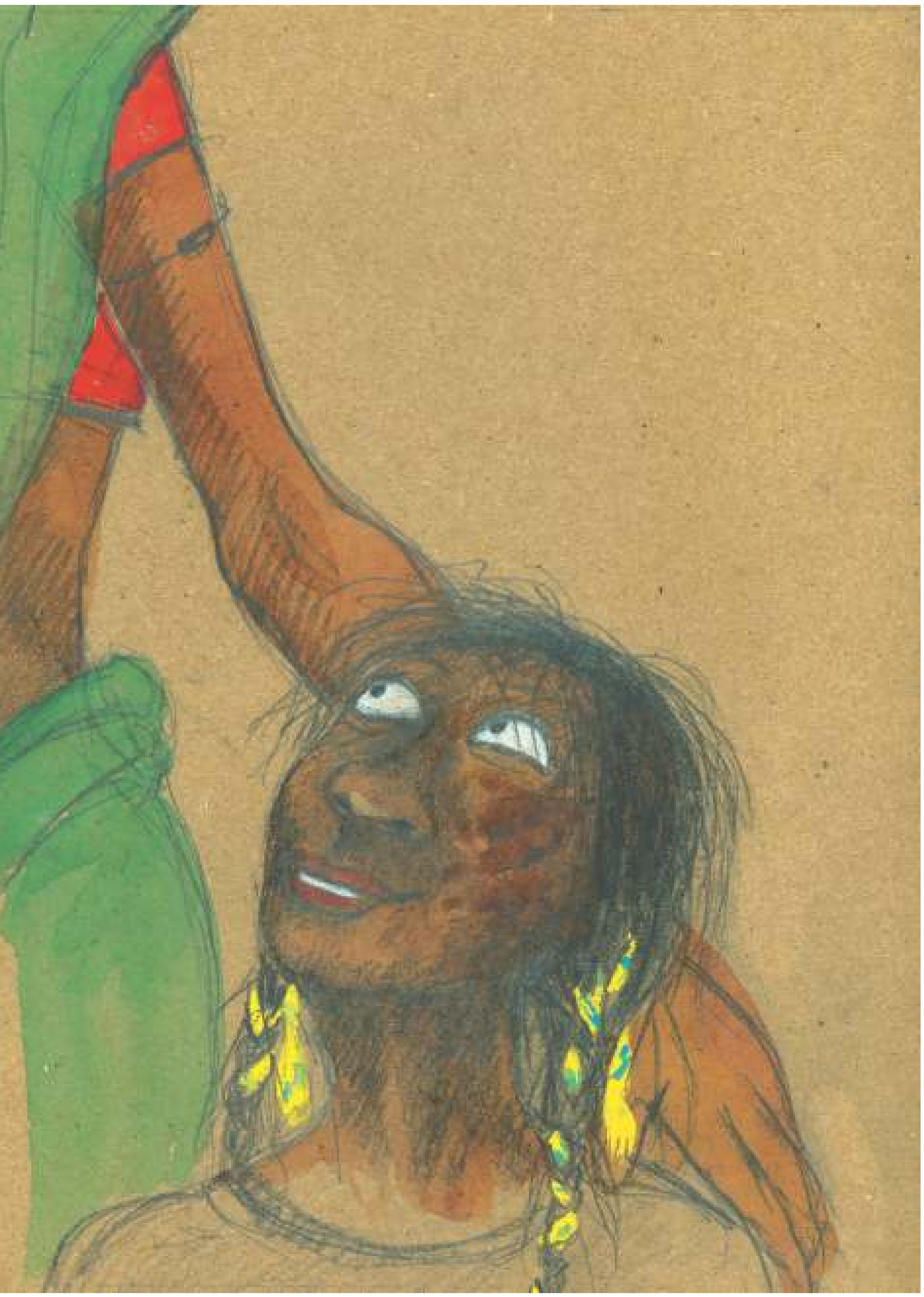

बाबा हमें पीटते थे यह बात तो उसे पता थी ही ऊपर से मैं भी *श्यामची आई*** फिल्म का "छड़ी लागे छमछम, विद्या येई (आती) धमधम" यह गाना सुर-ताल में गाती रहती।

हाँ, तो गर्दन कटे भूत ने जैसे ही मुझे वेताल के चंगुल में छोड़ा, वो चिल्लाया, "कान पकड़कर खड़ी हो जाओ।" फिर चिल्लाया, "झुककर खड़ी रहो।" फिर भी मास्साब का मन नहीं भरा। बोले, "जाओ, बाहर जाकर गोबर भरकर फेंक आओ।"

हमारे स्कूल में आवारा जानवर गोबर करते। हर कक्षा के बच्चों को बारी-बारी से गोबर साफ करना पड़ता। जब हमारी कक्षा की बारी होती तो सारा गोबर मुझे ही साफ करना पड़ता क्योंकि हमारे पास कपिला नाम की एक बाँझ गाय थी। वही गाय स्कूल में गोबर करती है – ऐसा मास्साब कहते और मुझी से गोबर साफ करवाते। पर आज गोबर साफ करने की बारी हमारी कक्षा की नहीं थी, फिर भी वे मुझे गोबर साफ करने को कह रहे थे।

मैंने देखा की सारी सहेलियाँ...सहेलियाँ नहीं मेरी दुश्मनें, मेरी तरफ देखकर खुसर-पुसर हँस रही थीं। पता नहीं मुझे क्या लगा पर मैं अपनी जगह से बिलकुल भी नहीं हिली। मास्साब दहाड़े, "क्यों, सुनाई नहीं देता?" मैं टस से मस नहीं हुई। .... मुझे पता था वे मुझे पीटेंगे...। वे उठे। उनके गुस्से की आग मैं महसूस कर रही थी फिर भी मेरे पैर जम गए थे। माय कहती हैं कि अजगर सामने आ जाए तो आदमी बुत बन जाता है। मैं बिलकुल वैसा ही महसूस कर रही थी।

मास्साब मेरे पास, बिलकुल पास आए और एक ज़ोरदार तमाचा जड़कर चिल्लाए, "चल, निकल यहाँ से!!!" मैं ज़ोर से रोने लगी और भागती हुई घर पहुँची। आँगन में माय टोकरियाँ बुन रही थी। मुझे रोता हुआ देख एकदम से खड़ी हो गई। पूछने लगी, "क्या हुआ! हुआ क्या? क्यों रो रही है?" मेरे मुँह से सिर्फ सिसकियाँ निकल रही थीं। लेकिन सूजकर फूला हुआ मेरा गाल और

जब हमारी कक्षा की बारी होती तो सारा गोबर मुझे ही साफ करना पड़ता क्योंकि हमारे पास कपिला नाम की एक बाँझ गाय थी। आज हमारी कक्षा की बारी नहीं थी, फिर भी वे मुझे गोबर साफ करने को कह रहे थे।

उस पर मास्साब के उँगलियों के निशान देखकर माय का माथा ठनका। "मास्साब ने मारा? ठहर जा, मैं देखती हूँ तेरे मास्साब को।" कहकर वो उनके नाम से गालियाँ निकालने लगी। "इस्कूल जाऊँ?" पूछने लगी।

माय को मास्साब के साथ झगड़ना चाहिए, उन्हें खूब गालियाँ देनी चाहिए ऐसा मुझे लग रहा था लेकिन उसके लिए उसे स्कूल नहीं जाना चाहिए। क्योंकि घुटनों के ऊपर चड्डी जैसी लपेटी फटी पुरानी साड़ी, बिखरे बाल इन सब से मुझे शर्म आती थी। रोते-रोते सूजी आँखों से मैं माय को देख रही थी।

माय बीच-बीच में बैठती, अपना काम शुरू करती और फिर उठकर खड़ी हो जाती। ऐसा दो-तीन बार हुआ। मेरी सिसकियाँ अभी भी चल रही थी। माय ने मेरे गाल पर हल्दी और फिटकरी घिसकर लगाई और पूछा, "काहे मारा तुझे?"

"मैंने... मैंने गोबर नहीं साफ किया ना, इसलिए।" मैंने रोते-रोते बताया। "तुझे गोबर साफ करने कहा?" "मास्साब कहते हैं कि अपनी कपिला ही गोबर करती है।" "ठीक है तू यहीं बैठ। जैसे ही मास्साब जाते हुए दिखेंगे, मुझे बताइयो।"

माय फिर से काम में जुट गई। मुझे लगा कि यह क्या करेगी हेर्लेकर मास्साब का? उनको देखते ही इसकी बोलती बन्द हो जाएगी। इसके मुँह-हाथ, दोनों, मुझ पर ही चलते हैं। दोपहर के बाद शाम को स्कूल की घण्टी बजी और मेरी धड़कन तेज़ हो गई। बच्चों के बीच से हेर्लेकर मास्साब आते दिखाई दिए तो मैं ज़्यादा ही घबरा गई। मेरे मुँह से शब्द अपने आप निकल पड़े, "माय, मास्साब।"

जैसे ही माय ने यह सुना, वो फन निकले नागिन की तरह उठकर खड़ी हो गई। मास्साब सामने से गुज़र रहे थे तो उसने अपने सर का पल्लू सँभालते हुए कहा, "मास्साब ज़रा रुकिए।" मास्साब ने पलटकर देखा और मिज़ाज से बोले, "क्या है?"

"मेरी छोरी आपके इस्कूल में पढ़ती है। उसने आज किया क्या? आपने उसे ऐसे मारा। देखो, इसका गाल देखो।" माय ने मुझे बुलाया और मेरा गाल मास्साब के सामने किया। उनकी तरफ देखने की हिम्मत मैं नहीं कर सकी।

मास्साब थोड़ा हड़बड़ाए। "पर वह ... आपकी सफेद गाय इस्कूल में गोबर करती है।" "हमारी गाय? हओ? आपने देखा उसे गोबर करते? आप इतने पढ़े-लिखे हो और छोटे बच्चों जैसी बातें करते हो? देखिए, मैं बेवा हूँ। यहाँ पेड़ के नीचे, रस्ते पे बच्चों को लेकर बैठी हूँ। क्यों? ताकि मेरे बच्चे पढ़े, लिखें। बड़े बने। और आप मेरी छोरी को ऐसी तकलीफ दे रहे हो?" गँवार भाषा में वो बड़बड़ाए जा रही थी। उसकी आवाज़ ऊँची होने लगी। मास्साब को धमकाते हुए उसने कहा, "देखिए, इसके बाद अगर आपने मेरी बच्ची को छुआ भी तो मैं देखती हूँ आप कैसे इस रास्ते से आना-जाना करेंगे।"

"हाँ, हाँ देख लो, मैं भी देख लूँगा।" ऐसा कहकर मास्साब पीछे हटे और वहाँ से गायब हो गए। अब तक काफी भीड़ जमा हो गई थी। लोग माय की बातें सुन रहे थे और मेरा सूजा हुआ मुँह देख रहे थे।

उस दिन से काफी चीज़ें फरक से होने लगी।... मेरे नसीब का गोबर साफ करना खत्म हुआ और मास्साब की मार भी। मैं समय से स्कूल जाने लगी। और सबसे बड़ी बात – पहली बार मुझे माय का सहारा महसूस हुआ और मेरी ज़िन्दगी की गाड़ी पटरी पर आ गई।

**रातांबा* कोंकण में पाया जाने वाला एक फल, सब्ज़ी-दालों में खटाई के लिए या शरबत के लिए इस्तेमाल होता है।

***श्यामची आई* (श्याम की माँ) – साने गुरुजी द्वारा लिखी मराठी की एक किताब जिस पर इसी नाम से एक फिल्म बनी। बीसवीं सदी के शुरू या उन्नीसवीं सदी के अन्त में लिखी इस किताब में ब्राह्मण महिलाओं के रोज़मर्रा के जीवन को दर्शाया है।

रास्ते जो रामकुमार ने ढूँढे और बनाए हैं

प्रयाग शुक्ल

रामकुमार चित्रकार हैं। कथाकार हैं। देश-दुनिया में बहुत घूमे हैं। न जाने कितने रास्तों पर चले हैं। और इन पर चलते हुए उन्होंने अपने चित्रों और कहानियों में खुद कई रास्ते बनाए हैं। वे शिमला और दिल्ली में बड़े हुए। इन्हीं शहरों में उनकी पढ़ाई-लिखाई हुई। शिमला में बड़े होने के कारण, पहाड़ों से उनको बहुत प्रेम रहा है। रामकुमार के पिता सरकारी नौकरी में थे। यह आज़ादी से पहले की बात है, जब अँग्रेज़ों का भारत में राज था। तब गर्मियों में राजधानी शिमला चली जाती थी। सर्दियों में फिर वह दिल्ली चली आती थी। जो लोग सरकारी नौकरियों में होते, उनके परिवार भी शिमला-दिल्ली के बीच इसी तरह आते-जाते रहते।

रामकुमार का रेखाचित्रः गायतोन्डे

रामकुमार अब नब्बे वर्ष के हैं। दिल्ली में रहते हैं। पर पहाड़ों का ज़िक्र आते ही उनकी आँखों में चमक आ जाती है। जब वह छोटे थे तो संगीत से उनको बहुत लगाव था। बड़े हुए तो कहानियाँ लिखने लगे। 21 के थे और दिल्ली के सेंट स्टीफेंस कॉलेज में एम.ए. अर्थशास्त्र की पढ़ाई कर रहे थे तो चित्रकला की ओर उनका झुकाव हुआ – एकदम अचानक। एक शाम जब वे दिल्ली के जनपथ में टहल रहे थे तो उन्हें शारदा अकील नाम के आर्ट स्कूल का बोर्ड दिखाई पड़ा। वहाँ चित्रों की एक प्रदर्शनी चल रही थी। उसे देखकर वे कुछ चकित हुए। चित्र अपनी ओर खींचते ही हैं। रामकुमार ने तय किया कि वे भी चित्रकला सीखेंगे। उनको सिखानेवाले थे शैलोज मुखर्जी जो स्वयं अपने समय के एक बहुत अच्छे चित्रकार थे। रामकुमार को उनकी बातों में बहुत रस आता पर। लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने पाया कि अपनी कला का रास्ता तो उन्हें खुद बनाना है। और एक स्कॉलरशिप पाकर वे समुद्री रास्ते से पेरिस जा पहुँचे। जहाज़ में ही उन्होंने एक ईसाई पादरी से फ्रांसिसी भाषा भी सीख ली। यह बात आज से कोई साठ बरस पहले की है। पेरिस उन दिनों कला का गढ़ माना जाता था। दुनिया भर से युवा चित्रकार वहाँ जाकर रहना और काम करना पसन्द करते थे। वहाँ रामकुमार की कई दोस्तियाँ हुईं, फ्रांसिसी चित्रकारों और कवियों से भी। भारतीय चित्रकार सैय्यद हैदर रज़ा भी तब वहीं थे। रामकुमार उनसे दिल्ली में मिल चुके थे। और दोनों अच्छे दोस्त भी बन चुके थे। सो एक-दूसरे का सहारा भी रहता था। पेरिस रहते हुए ही रामकुमार ने यूरोप के अन्य देशों की भी यात्राएँ कीं और अपनी इन यात्राओं के बारे में एक किताब भी लिखीः *यूरोप के स्कैच*। फ्रांस से दिल्ली लौटकर रामकुमार ने चित्र बनाना और कहानी लिखना जारी रखा।

चित्र बनाने का रामकुमार का ढंग उनका बिलकुल अपना है। जब वे आकृतियाँ बनाते थे, तो उन आकृतियों के खड़े होने या बैठने के ढंग में एक खिंचाव-सा होता था। वैसा खिंचाव जो हमें किसी के तंग कपड़ों में दिखाई पड़ता है। थोड़ी-सी रेखाओं के साथ वे बहुत कुछ उभार देते हैं।

शुरू के रामकुमार के चित्रों में स्त्री-पुरुषों की कुछ उदास-सी आकृतियाँ हैं। बेकार युवकों के चेहरे हैं। शहरों के घर-गलियाँ हैं। रंग ज़्यादा नहीं हैं। यहाँ अकेलेपन की पीड़ा है। एक-दूसरे को ठीक से न समझ पाने से उपजी हुई बेचैनी है। फिर रामकुमार की कला में एक घटना घटित होती है। 1960 में वे मकबूल फिदा हुसैन के साथ वाराणसी जाते हैं। वहाँ की गलियों और घाटों को पास से देखते हैं। पुरानी इमारतों को भी, लोगों के हुजूम को भी। पर, अपने चित्रों में आकृतियों को नहीं आने देते। उन्हें लगता है कि उन्होंने जो कुछ वाराणसी में अनुभव किया है, जीवन के जो रंग उन्होंने देखे हैं गलियों-घाटों-रास्तों से जो रिश्ता बनाया है, उसी के सहारे वे अपनी बात कहेंगे। अब उनके चित्रों से धूसर रंग चले जाते हैं। कुछ नए रंग प्रकट होते हैं। पीड़ा और बेचैनी के भी भाव चले जाते हैं। वाराणसी चित्रों में प्रकट होती है – एक शान्ति, एक सुन्दरता। रामकुमार की वाराणसी भीड़ भरी वाराणसी नहीं है। घाट की सीढ़ियाँ हैं। इमारतों के बीच से फूटती गलियाँ हैं। गंगा की धारा है, ठहरी हुई-सी। कहीं-कहीं नावें भी हैं। इन चित्रों को हम जब भी देखते हैं, उनके आकर्षण से बन्ध जाते हैं। इनमें आकाश का नीला है। जल का भी। धूप का पीलापन है। एकाध चित्र ऐसे भी हैं जिनमें धुँधली-सी नावें हैं, नीले-रंग में डूबी हुई-सी। लगता है जैसे रामकुमार वाराणसी की गलियों, रास्तों, घाटों, इमारतों, नावों के साथ-साथ किसी स्वप्नलोक में उतर गए हैं, और हमें भी उसी स्वप्नलोक में लिए जा रहे हैं।

चित्र बनाने का रामकुमार का ढंग उनका बिलकुल अपना है। जब वह आकृतियाँ बनाते थे, तो उन आकृतियों के खड़े होने या बैठने के ढंग में एक खिंचाव-सा होता था। वैसा खिंचाव जो हमें किसी के तंग कपड़ों में दिखाई पड़ता है। थोड़ी-सी रेखाओं के साथ वे बहुत कुछ उभार देते हैं। और जब रामकुमार ने वाराणसी के चित्र बनाने शुरू किए तो वहाँ भी चीज़ों को रखने का उनका एक बिलकुल अपना रंग-ढंग दिखाई पड़ा। इसके बाद से रामकुमार ने जो भी चित्र बनाए हैं, वे सब दृश्य चित्र (लैंडस्केप) हैं। ये दृश्य चित्र ऐसे भी हैं जिनमें किसी चीज़ को हम हूबहू पहचान नहीं सकते हैं कि यह पहाड़ है, या यह नदी है, या यह कोई सचमुच का रास्ता है। होता यह है कि हर चित्र अपने आप में एक दृश्य बन जाता है: कभी इनमें चट्टानों जैसी चौड़ी रंग-परतें दिखाई पड़ती हैं, कभी नदी की धारा जैसी कोई रंग-पट्टी। कभी ऐसा हरा है, जो हरियाली की याद दिला रहा होता है। कभी लाल या पीला ऐसा जैसे सूर्योदय या सूर्यास्त के समय दिखता है। कभी इनमें पहाड़ों पर दिखनेवाले रंग हैं।

अब उनके चित्रों से धूसर रंग चले जाते हैं। कुछ नए रंग प्रकट होते हैं। पीड़ा और बेचैनी के भी भाव चले जाते हैं। वाराणसी चित्रों में प्रकट होती है – एक शान्ति, एक सुन्दरता।

इसके बाद रामकुमार जहाँ-जहाँ गए वहाँ के रंग, वहाँ की भूमि, वहाँ की वनस्पतियों की यादें, उनके मन में बस गईं। पेरू की यात्रा में उन्होंने माच्चू-पिच्चू का भूमि-खण्ड देखा, लद्दाख की यात्रा में लद्दाख के पर्वतीय रूप-रंग देखे, इसी तरह यूनान, न्यूज़ीलैंड की जब जो भी यात्राएँ उन्होंने कीं, वे यात्राएँ उनके काम में किसी न किसी रूप में झलक उठीं। न्यूज़ीलैंड की यात्रा में तो वहाँ के झील-समुद्री दृश्यों, वनस्पतियों आदि ने उन्हें मोह लिया और उनके काम में रंग प्रसन्न हो चमक उठे। वैसे रामकुमार जानते हैं कि लाल रंग भी उदास हो सकता है। कोई रंग किस प्रकार, कहाँ और कैसे बहता गया है – उसी से उसकी उदासी या प्रसन्नता व्यक्त होती है।

मैं 1964 में दिल्ली आया था। तब मेरे पास रहने की कोई जगह न थी। तो मैं रामकुमार के गोल-मार्केटवाले स्टूडियो में कोई तीन महीने रहा था। यह अवसर उन्होंने ही मुझे दिया था। तब से देखता आ रहा हूँ कि वे अत्यन्त सादा जीवन बिताते हैं – बिना किसी तामझाम के। रामकुमार कैनवास पर तैल रंगों, एक्रिलिक रंगों का इस्तेमाल करते रहे हैं। कागज़ पर उन्होंने पेस्टल, चारकोल, पेंसिल, पेन आदि से बहुत से चित्र और रेखांकन बनाए हैं।

अपनी कहानियों में वे सर्दी-गर्मी के दिनों का, रास्तों-पगडण्डियों का, जंगलों का बड़ा सुन्दर वर्णन करते हैं। पर कहानियों के पात्रों के मन में जो कुछ चल रहा होता है, उसे इन वर्णनों से जोड़ते भी जाते हैं। उनकी कहानियाँ धीमी गति से चलती हैं, उनमें चुप्पियाँ हैं, वे ऐसे पकड़-सी लेती हैं।

वे जलरंगों का भी इस्तेमाल करते हैं। एक्रिलिक रंगों को ट्यूब से निकालकर वे ब्रुश की बजाए चाकू (पैलेट नाइफ) से लगाना पसन्द करते हैं। इस प्रकार बिछाई गई रंग-परतों में एक ग़ज़ब का सौन्दर्य होता है। उनके काम में हमें संगीत की लय की तरह बराबर एक लय मिलती है। जब वे रेखाओं में काम करते हैं तो भी हम यही पाते हैं कि उनकी रेखाएँ मानो किसी "यात्रा" में निकल पड़ी हैं और धीरे-धीरे अपने-अपने रास्तों पर चली गई हैं: फिर कहीं मिलती-जुलती, किसी पुल पर आकर खड़ी हुईं। जुड़ती-बिछुड़ती हुई। उनका इस तरह कई रास्तों पर चले जाना दिलचस्प लगता है। लोग कई बार उन चित्रों-रेखांकनों का मतलब पूछते हैं जो किन्हीं चीज़ों को लेकर नहीं हैं – बस अपनी ही तरह से हैं। इस पर यही कहने का मन होता है कि उनका मतलब तो उनके रंगों, उनकी रेखाओं की "सुन्दरता" में ही छिपा है। हम क्या कभी शाम को आकाश में बिखरे हुए रंगों का मतलब पूछते हैं? क्या जल पर किरणों के चमक उठने का मतलब पूछते हैं? तितली या मोर के रंगों का मतलब पूछते हैं?

रामकुमार को कई पुरस्कार-सम्मान मिले हैं। देश-विदेश में उनके चित्रों की ढेरों प्रदर्शनियाँ हुई हैं। उनकी कला पर पुस्तकें और कैटलॉग प्रकाशित हैं। रामकुमार अब कहानियाँ नहीं लिखते हैं। पर, उनके एक दर्जन कहानी संग्रह प्रकाशित हैं। रामकुमार के छोटे भाई निर्मल वर्मा को भी अपनी कहानियों-उपन्यासों से पाठकों का बहुत प्रेम मिला है।

रामकुमार ने सचमुच एक बहुत लम्बा रास्ता तय किया है बल्कि कहें कि कई छोटे-बड़े रास्ते तय किए हैं अपने अनुभवों को अपनी कहानियों, अपने चित्रों में, रेखांकनों में रखा है – इस तरह कि वे सीधे ही हमारे मन में उतर जाते हैं।

—प्रांजल सिंह, दूसरी, विवेकानन्द विद्यापीठ, भोपाल, म. प्र.

मेरा नाम लक्ष्य है। मैं कक्षा छठी "ड" में एक प्राइवेट स्कूल में पढ़ता हूँ। हमारे स्कूल में सिर्फ पाँचवीं क्लास तक ही ड्राइंग करवाते हैं। मुझे अपने स्कूल का एक ही पीरियड अच्छा लगता है पीटी का क्योंकि उसमें कभी-कभी ही पीटी करवाते हैं और ज़्यादातर खिलवाते हैं।

हमारी सिर्फ एक महीने की छुट्टियाँ होती हैं। उसमें भी हमें चार-पाँच पेज गृहकार्य दे देते हैं। मैं अगर कहीं घूमने भी जाता हूँ तो मुझे अपनी किताबें साथ लेकर जानी पड़ती हैं। हम अगर कोई किताब घर भूल आएँ तो हमें मार पड़ती है। हमें इन छुट्टियों में 10-15 पेज सुलेख के मिलते हैं। और अँग्रेज़ी विषय में 5-6 एक्टिविटीज़ मिलती हैं। जैसे एक जगह जहाँ मैं घूमा उसके बारे में हमें 100 शब्दों में लिखना था।

—लक्ष्य बावेजा, छठी, हिसार, हरियाणा

—श्रेया राउत, छठी, आनन्द निकेतन स्कूल
सेवाग्राम, वर्धा, महाराष्ट्र

ये क्या बात हुई...

पापा आप बहुत अच्छे हैं
ये क्या बात हुई
पापा फोन पर बात कर रहे हैं
ये क्या बात हुई
मम्मी खाना बना रही हैं
ये क्या बात हुई
आज सरदी पड़ रही है
ये क्या बात हुई
चार दिन बाद मेला है
ये क्या बात हुई
आज तारीख ही नहीं पता है
ये क्या बात हुई

—नील, दूसरी,
सवाईमाधोपुर, राजस्थान

मेरा पन्ना

—बीहू, आठ वर्ष, भोपाल, म. प्र.

बादल और जंगल

एक अंकल थे। वह सुबह-सुबह दौड़ रहे थे। तभी थोड़ी-सी आँधी आई। अंकल को समझ ही नहीं आया और वो उड़ते-उड़ते आसमान में चले गए। बादलों के ऊपर पहुँच गए। वहाँ उन्होंने देखा एक घना जंगल था। उन्होंने सोचा ज़रूर जंगल में जानवर भी होंगे। जब वो जंगल में घूमने लगे तो उनको बाघ, भालू, लकड़बग्घा वगैरह जानवर दिखने लगे। उन्होंने सोचा, अरे अपने बच्चों को भी बुला लूँ। उन्होंने देखा उनकी जेब में मोबाइल था। उन्होंने अपने बच्चों को फोन किया। वह बताने लगे कि यहाँ एक घना जंगल है। तुम सब भी आ जाओ। लेकिन फिर सोचने लगे कि तुम लोग कैसे आओगे। उन्हें याद आया कि जब वह दौड़ रहे थे तो एक आँधी आई। उन्होंने बच्चों को बताया कि तुम सब भी हाथ पकड़कर दौड़ना। ठीक वैसा ही हुआ। जैसे ही सब बच्चे हाथ पकड़कर दौड़े अचानक एक आँधी आई। सब बच्चे भी उड़ते हुए आसमान में पहुँच गए। फिर उन अंकल ने अपने बच्चों को भी जंगल घुमाया और उन्होंने मिलकर बाघ, भालू, लकड़बग्घा वगैरह जानवर देखे।

—शिवानी, आठ साल, जबलपुर, म. प्र.

शीतल हवा

माघ की शीतल हवा
हड्डियाँ कँपा रात भर जगा
गरीबों को चौराहे पर बिठा
आग तापने को बता
झूम रही है झूम रही है
शीतल हवा

—लावण्यम शरण, पाँचवीं, डीपीएस पटना, बिहार

पंजाबी बाल उपन्यास

मगरमच्छों की दुनिया का रोमांचक सफर.....

मगरमच्छों का बसेरा

जसबीर भुल्लर

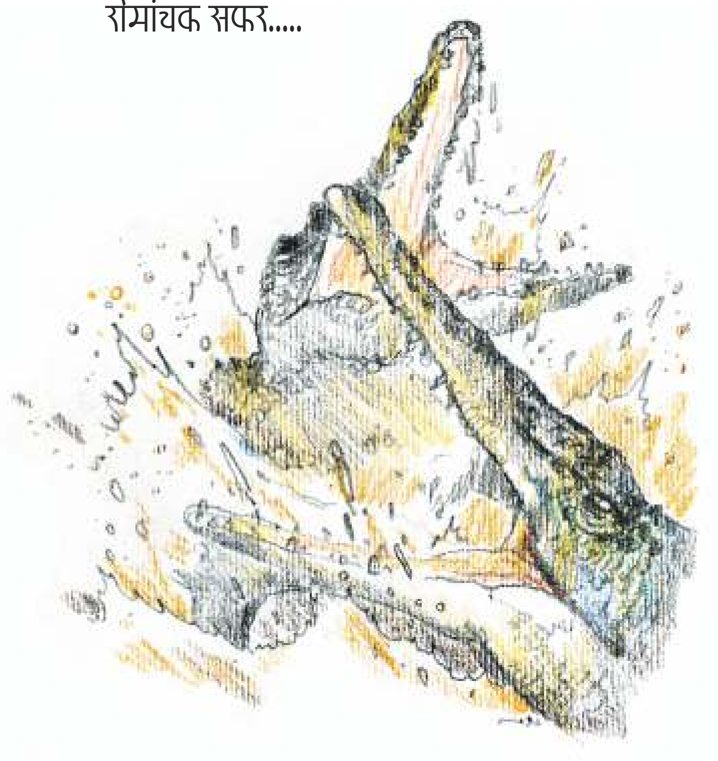

नदी के पश्चिमी तट पर दूर-दूर तक गहरा जंगल फैला था। जंगली बेलों ने पेड़ों को जैसे ढँक दिया था। उनकी अस्त-व्यस्त टहनियाँ पेड़ों से नीचे नदी पर झूल रही थीं। किनारे के साथ-साथ उगी घनी फैली झाड़ियों ने जंगली जानवरों का पानी तक पहुँचने का रास्ता सँकरा कर दिया था। पेड़ों की घनी छाँव के नीचे कीचड़ था। वहाँ नदी ठहरी हुई-सी थी।

नदी के इस पार तट पर मगरमच्छों का बसेरा था। इस समय वहाँ मगरमच्छ एक-दूसरे से गुत्थमगुत्था हो रहे थे।

यह कोई नई बात नहीं थी। मगरमच्छों की लड़ाई खेल जैसी ही थी। कभी वे एक-दूजे को दाँतों से काटने लगते तो कभी पूँछ से मारकर भाग खड़े होते। एक-दूसरे से भोजन छीन लेना और फिर गुत्थमगुत्था होना।

पर मगरमच्छों की आज की लड़ाई का कारण कुछ और था।

मग्घू मगरमच्छ और किरली मादा मगरमच्छ अब बड़े हो चुके थे। अब उन्हें अपना अलग घर बसाना था। जो जगह उन दोनों को भायी थी, वहाँ मगरमच्छों का एक दूसरा जोड़ा रहना चाहता था। नदी छोटी तो थी नहीं। वे कुछ दूर जाकर दूसरी जगह पर कब्ज़ा कर सकते थे। लेकिन मगरमच्छ ऐसा नहीं सोचते। वे अपने ज़्यादा निर्णय लड़कर ही लेते हैं।

मग्घू ने दूसरे मगरमच्छ को जकड़कर पीछे धकेलने की कोशिश की तो दोनों पानी में जा गिरे। मग्घू दूसरे मगर से ज़्यादा फुर्तीला था। उसने जल्दी से सम्भलते हुए अपनी दुम से वार किया। उसकी पूँछ हँसिए-सी काँटेदार थी। पूँछ के वार ने दूसरे मगर को ज़ख्मी कर दिया था। मादा मगरमच्छ अभी तक किरली के वार सहन कर रही थी। उसने अपने साथी के घाव से खून बहते देखा तो घबराकर पानी की ओर भागी। किरली ने उस भागती मगर पर पूँछ से वार कर दिया। पर तब तक दूसरी मगर दूर जा चुकी थी। पूँछ के छपाके से बहुत-सा कीचड़ उछला। अपनी संगिनी को भागते देख दूसरा मगर भी हार मानकर उसके पीछे-पीछे भाग गया।

मग्घू एक तगड़ा मगरमच्छ था। किरली भी किसी सूरत कम न थी। यदि दूसरा मगर कुछ देर और अड़ा रहता तो शायद ये दोनों मिलकर उसे मार ही डालते। मगरमच्छों की आपसी लड़ाइयों में ऐसा कई बार हो चुका था। ताकतवर पक्ष दाँव लगने पर कमज़ोर पक्ष को मार भी डालता था।

मग्धू और किरली ने कुछ दूर तक उनका पीछा किया और फिर लौट आए। वे देर तक आँखें मूँदे कीचड़ में पड़े रहे। इस तरह लेटने का मज़ा ही कुछ और था। यह कीचड़ अब उनका घर बन गया था। शाम धीरे-धीरे ढलती गई। पेड़ों के नीचे का अँधेरा घना होता गया। किरली ने आँखें खोलीं और नदी के चौड़े पाट की ओर देखा। लगता था जैसे नदी सो रही हो। नदी का पानी भले ही बह रहा था, पर लगता वो शान्त-स्थिर ही था।

जंगल में जानवरों का शोर धीरे-धीरे बढ़ रहा था। ये सब मगरमच्छों का भोजन थे। उनकी आवाज़ें सुनकर मग्धू और किरली मादा की भूख अचानक जाग गई।

उन्हीं दिनों जंगल में हाथियों का एक झुण्ड आया हुआ था।

वे दिन-रात पेड़ों के पत्ते तोड़-तोड़कर खाते रहते थे। पेट भरता तो नदी की ओर पानी पीने चल देते।

उस समय भी हाथी हरे-भरे पत्तों को चबाते, टहनियाँ तोड़ते, जंगल में दूर तक फैल गए थे। एक हाथी का बच्चा झुण्ड से बिछुड़कर नदी पर जा पहुँचा। माता हथिनी अपना पेट भरने में इतनी मग्न थी कि उसका अपने बच्चे के अलग होने पर ध्यान ही नहीं गया।

नन्हे हाथी ने किनारे पर खड़े-खड़े शान्त बहती नदी की ओर देखा। उस समय ठण्डी मीठी हवा बह रही थी। चाँद की रोशनी में लहरें चाँदी जैसी बह रही थीं। उन लहरों पर दो शहतीर धीरे-धीरे डोल रहे थे। लकड़ी के शहतीरों से हाथी के बच्चे को भला क्या खतरा हो सकता था!

वह पानी में घुस गया। पानी गहरा नहीं था। वह कुछ और आगे चला गया। उसने सूँड पानी में डाली और पानी को ऊपर की ओर खींचा।

दोनों शहतीरों में हरकत हुई। मग्धू और किरली तैरते हुए हाथी के बच्चे की ओर बढ़े। सभी मगरमच्छ ऐसा ही करते हैं। शिकार के इन्तज़ार में वे शरीर को ढीला छोड़ पानी में तैरते रहते हैं। उनकी आँखें, नथुने और शरीर का कुछ ही हिस्सा पानी के बाहर दिखाई पड़ता है। दूर से देखने पर लकड़ी के शहतीरों का ही भ्रम होता है।

हाथी झुण्ड में ही रहते हैं और झुण्ड में ही नदी पर पानी पीने आते हैं। उन पर हमला करना खतरे से खाली नहीं होता। वे तो मगरमच्छों को चाहे पैरों के नीचे ही कुचल दें!

हाथी के बच्चे को अकेला देखकर किरली और मग्धू सभी खतरे भूल गए। उनमें गज़ब की फुर्ती आ गई। हमला करके दोनों ने हाथी के बच्चे को गिरा दिया। किरली उसकी एक टाँग को अपने मज़बूत जबड़ों में पकड़कर गहरे पानी में खींचने लगी।

हाथी का बच्चा मदद के लिए चिंघाड़ा। जंगल के अधिकतर जानवर अपने साथी को खतरे में फँसा छोड़कर भाग जाते हैं। पर हाथियों में यह बड़ा गुण था कि वे मिलकर खतरे का सामना करते थे। बच्चे की चिंघाड़ सुनकर झुण्ड के सभी हाथी वहाँ पहुँच गए।

किरली और मग्धू बचकर सरकण्डे की ओर भागे।

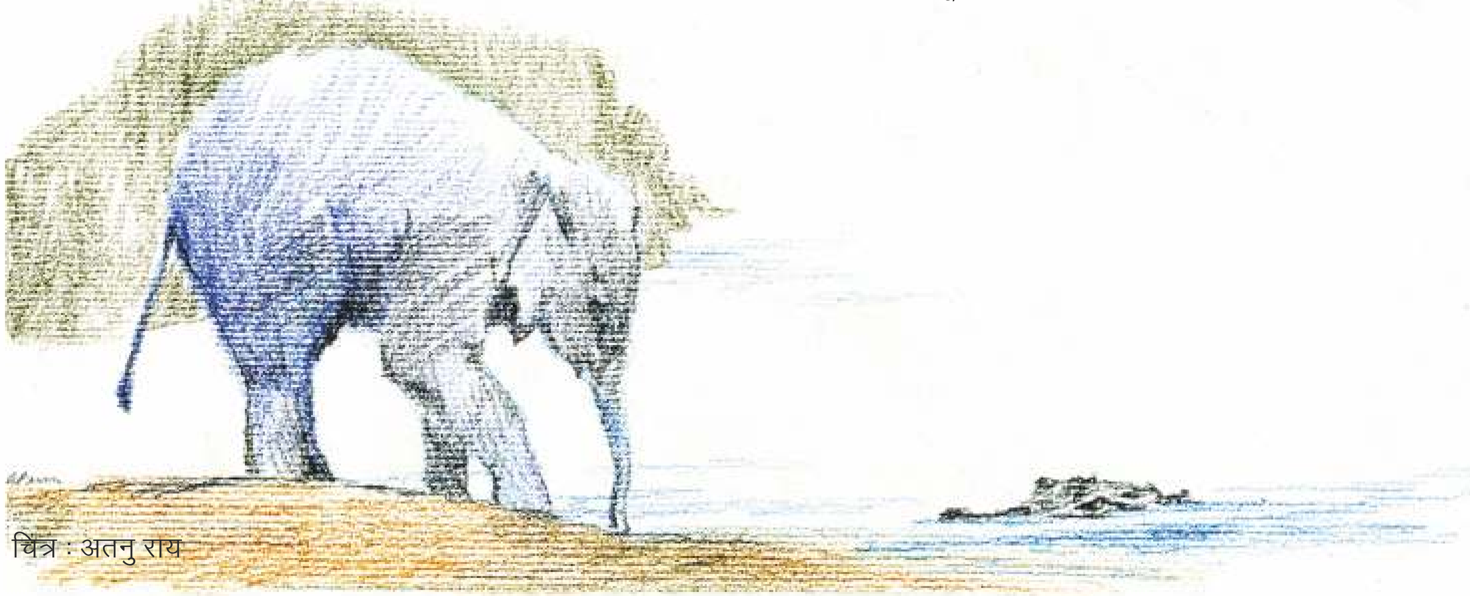

चित्र : अतनु राय

चित्रः अतनु राय

हथिनी माँ ने बच्चे को उठाने की कोशिश की लेकिन तब तक वह दम तोड़ चुका था।

हथिनी माँ ने दोनों मगरमच्छों को सरकण्डे की ओर दौड़ते देख लिया था। सरकण्डा मगरमच्छों के छिपने की खास जगह थी। वहाँ पानी गहरा था। हथिनी गुस्से में उनके पीछे दौड़ी। उसकी मदद के लिए दूसरे हाथियों ने भी सरकण्डे में तबाही मचा दी। लेकिन किरली और मग्धू मगरमच्छ जाने कहाँ जा छिपे थे! थक-हारकर झुण्ड के सब हाथी वापिस लौट आए।

हाथी कुछ देर तक मृत बच्चे को घेरे खड़े रहे और फिर निराश से जंगल की ओर चल पड़े। हथिनी वहाँ अकेली खड़ी रही।

हाथी के बच्चे को न उठना था, न वह उठा। हथिनी माँ सिर झुकाए आँसू बहाती रही।

किरली और मग्धू सरकण्डे की ओट में छिपे हथिनी के वहाँ से जाने का इन्तज़ार करते रहे। उनका भोजन हाथी बच्चे के रूप में वहाँ पड़ा था। परन्तु हथिनी के होते हुए भोजन तक जाने की हिम्मत उनमें न थी। थक-हारकर वे खुद ही वहाँ से चले गए। इस भोजन के इन्तज़ार में रहते तो भूखे रह जाने का डर था। उन्हें भोजन के लिए अब नए सिरे से जुटना था।

अगले दिन वे दोनों फिर वहाँ आए। उनका ख्याल था कि हथिनी माँ वहाँ से जा चुकी होगी। लेकिन वह वहीं खड़ी थी। भूखी, कल से लगातार बच्चे की रखवाली करती।

हथिनी को उदास खड़ी देख वे दोनों दूर से ही लौट गए।

किरली और मग्धू मगरमच्छ कई दिनों तक बिना नागा अपने शिकार के लिए आते रहे। हथिनी माँ हर बार वहीं खड़ी दिखती।

अब दोनों को उस तरफ जाने में भी डर लगने लगा था। शिकार की खोज में वे दूसरी ओर जाने लगे। उन्हें पता नहीं कि हथिनी माँ अपने बच्चे के उठने के इन्तज़ार में कितने दिनों तक वहाँ खड़ी रही या फिर वह वहाँ से कभी वापिस गई भी या नहीं!

रोज़ की तरह शाम ढले जंगल का राजा शेर अपनी माँद से बाहर निकला। उसने पूरा मुँह खोलकर उबासी ली। शरीर झटका और धीरे-धीरे एक तरफ चल दिया। उसकी चाल में कोई तेज़ी न थी। अचानक उसके पाँव थम गए। उसके शरीर में चुस्ती दिखने लगी। उसने सिर ऊपर उठाकर गहरी साँस ली।

हवा में भोजन की गन्ध थी। शिकार की गन्ध नदी की ओर से आ रही थी। शेर ने अपनी दिशा बदल ली। उसकी चाल में तेज़ी आ गई।

(आगे की कहानी अगले अंक में जारी)

1

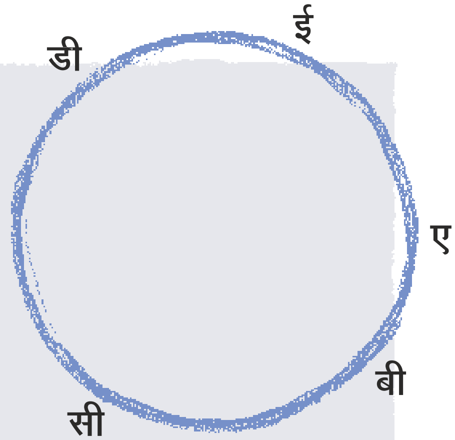

सारा, गीत, रेहान, साहिल व ज़ेनी एक गोल मेज़ के इर्द-गिर्द बैठे हैं। गीत रेहान के बाईं ओर बैठी है, सारा ज़ेनी के दाईं ओर बैठी है। साहिल गीत के बाईं ओर बैठा है। यदि गीत मेज़ के "ए" बिन्दु पर रखी कुर्सी पर बैठी हो तो बताओ कि बाकी लोग कहाँ-कहाँ बैठे हैं।

2 तुम्हारे पास 8, 5 व 3 लीटर क्षमता के तीन बर्तन हैं। 8 लीटर क्षमतावाला बर्तन पूरी तरह भरा हुआ है। केवल इन्हीं तीन बर्तनों का इस्तेमाल करके तुम्हें 8 लीटर पानी को 4-4 लीटर में बाँटना है। कम से कम चरणों में तुम ऐसा कैसे करोगे?

बिना दाना-पानी का खाना,
एक राह से आना-जाना।
मंज़िल आकर न पहचाने,
तीनों सगे, पर रहे बेगाने।

(घड़ी की सुइयाँ)

यह पहेली सौम्या स्तुति, पाँचवीं, डीपीएस पटना, बिहार से प्राप्त हुई है।

माथापच्ची

3 यदि तुम्हें अपनी पसन्दीदा जगह जाकर रहने का मौका मिले तो तुम कहाँ जाना चाहोगे और क्यों?

4

एक गली में 5 घर हैं। हर दो घरों के बीच की दूरी 100 फिट है। पहले घर में 2, दूसरे घर में 3, तीसरे घर में 4, चौथे घर में 5 और पाँचवें घर में 6 बच्चे रहते हैं। यदि स्कूल बस इस गली में केवल एक की बस स्टॉप बनाना चाहती हो तो उसे अपना बस स्टॉप किस घर के सामने बनाना चाहिए ताकि सभी बच्चों को कम से कम पैदल चलना पड़े?

गिनती का अन्त क्यों नहीं होता?

(यह सवाल नई दिल्ली के जतिन ने पूछा है। वे दसवीं में पढ़ते हैं।)

अगर गिनती खत्म होती तो क्या होता? तो कोई आखरी संख्या होती। कौन-सी संख्या? मान लो वो संख्या 1000000000000000 है। पर मैं कह सकती हूँ कि नहीं इसके बाद की संख्या मुझे पता है और वो है - 1000000000000000 + 1

और यह सही भी है। इसमें कोई गलती नहीं।

असल में संख्याएँ जिन्हें हम गिनने में इस्तेमाल करते हैं प्राकृत संख्याएँ (natural numbers) कहलाती हैं। जैसे 1, 2, 3,4...। इन संख्याओं का सेट (समुच्चय) प्राकृत संख्याएँ कहलाता है। इस सेट की किन्हीं भी दो संख्याओं का जोड़ एक और संख्या होगी जो इसी सेट का हिस्सा होगी। तो मान लो कोई कहता है कि आखरी संख्या N है। पर हम जानते हैं कि N और 1 दोनों इसी सेट में शामिल हैं तो N + 1 भी इसी सेट में होगी। यानी गिनती किसी भी N पर खत्म नहीं हो सकती।

- आलोका कनहरे

चित्रः विदूषी यादव

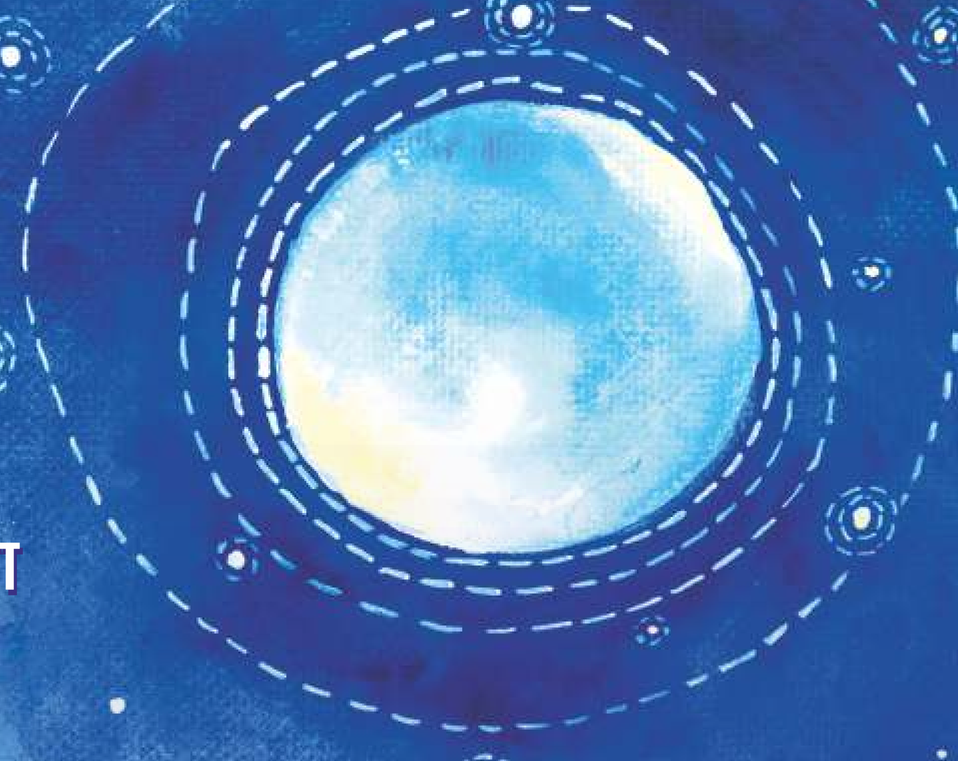

तारों का जन्मना

जर्मनी, न्यूरी एम बुन्नी, 14 साल

कई साल पहले की बात है। तारों के रात में चमकने से भी पहले की। एक राजा आसमान में रहता था। वो एक बेहद खूबसूरत संगमरमर के महल में रहता था। आसपास सफेद ऊन से बादल तैरते रहते। जो सूरज के उगते ही गुलाबी हो जाते।

उसके महल में अपार खूबसूरती थी – लम्बे नक्काशीदार खम्भे, भालू के झबरीले फर से ढँके फर्श, अनोखी सुन्दर चिड़ियाँ अपनी रंगीन पूँछों को हवाओं में फहराती फिरतीं।

वैसे तो यहाँ सब कुछ बहुत कीमती और आलीशान था, लेकिन समुद्र के राजा के दिए तोहफे की तो कोई बराबरी ही न थी। वो एक शानदार चमचमाता फूलदान था। चाँदी-सी चमकीली किरणें उससे फूटतीं। उसके घुमावदार किनारों से टकराकर रोशनी चारों ओर बिखर जाती।

राजा को यह तोहफा इतना प्यारा था कि उसने एक आदमी खास इसकी झाड़-पौंछ के लिए रख लिया था। वो उसके बाहर ही नहीं अन्दर से भी सफाई करता ताकि उसकी चमक बनी रहे। यह बड़ी मेहनत भरा काम था क्योंकि वो फूलदान बहुत ही बड़ा था।

एक रात जब राजा महल में नहीं था तो एक भयानक घटना घटी। वो आदमी जो सारा दिन इसे चमकाने में लगा रहा था बेहद थक गया था। और जाने कब इससे टिककर सुस्ताने लगा था। और जाने कब उसने जम्हाई ली और नींद की चादर ओढ़ ली। तभी एक ज़ोरदार आवाज़ के साथ वो खूबसूरत फूलदान ज़मीन पर आ गिरा और टुकड़े-टुकड़े हो गया। अचकचाकर वो जागा। और जो देखा तो उसका दिल बैठ गया। मौत उसकी आँखों के सामने तैर गई।

खैर, वो झुका और चुपचाप उन बिखरे टुकड़ों को एक झोले में भरने लगा। टुकड़े इतने सारे थे कि उन्हें इकट्ठा करने में बहुत वक्त लगा। फिर वो किसी तरह खींचकर उस थैले को बालकनी तक लाया। फिर डरते-डरते मुट्ठी भर-भर के वो उन्हें अँधेरे में उछालने लगा। वह उनकी खूबसूरती पर अचम्भित भी होता जा रहा था। तभी उसने देखा कि वो टुकड़े आकाश में छितरकर चमकने लगे। स्याह आसमान पर वे चमकते हुए बेहद सुन्दर लग रहे थे। इतने सुन्दर कि जब राजा लौटा तो वो इस खूबसूरत मंजर से निगाह उठा ही नहीं पाया। वो देखता गया देखता गया और उसकी आँखों से खुशी के आँसू बहते रहे।

आदमी की जान बख्श दी गई कि उसी ने तो यह देखने का मौका दिया। अब राजा यह खूबसूरती जिन्हें हम तारे कहते हैं – कितने सारे लोगों के साथ बाँट सकता था।

एक प्रयोग

विवेक मेहता

तुम लोगों के जवाब मिले। मज़ा आ गया पढ़कर। कुछ अनुभव तो इतनी सुन्दर चिट्ठियों के साथ थे कि मन खुश हो गया। तुम में से कइयों ने ये प्रयोग अपनी कक्षा में दोस्तों और भाई-बहनों के साथ मिलकर किए। साथ में प्रयोग करने से थोड़ी आसानी तो हो ही जाती है लेकिन असली मज़ा आता है प्रयोग के अनुभवों पर मिल-जुलकर चर्चा करने में।

तुम में से लगभग सभी को इस प्रयोग के जो नतीजे मिले उसमें गर्म करने पर हवा भरा गुब्बारा तो झट-से फूट गया लेकिन पानीवाला गुब्बारा नहीं फूटा। कुछेक ने यह भी बतलाया कि हालाँकि पानीवाला गुब्बारा फूटा तो नहीं, लेकिन उसमें भरा पानी गर्म होने लगा था। कुछ बच्चों ने अनुभवों का विश्लेषण कर मिले नतीजों के पीछे के कारण भी सुझाए।

जब हम एक गुब्बारे को उसकी पेंदी से गर्म करते हैं तो गुब्बारा गर्म होकर अपनी पेंदी के पास से पिघलकर कमज़ोर पड़ने लगता है। इसके साथ ही गुब्बारे की पेंदी से सटी अन्दर की हवा भी गर्म होने लगती है। हवा गर्म होने पर ऊपर की ओर उठने के साथ-साथ फैलती भी है। फैलती हुई हवा गुब्बारे के अन्दर जगह बनाने की कोशिश करती है, जिसके चलते गुब्बारे की सतह पर दबाव बनता है। ज़ाहिर है गुब्बारे के अन्दर का यह दबाव पहले से कमज़ोर पड़ी पेंदी को और भी कमज़ोर बना देता है। ऐसे में सम्भव है कि गुब्बारा ऐसी ही जगह से फूटे।

जब हम गुब्बारे में थोड़ा-सा पानी भरकर ये प्रयोग दोहराते हैं तो गुब्बारे की पेंदी से सटा पानी मोमबत्ती से मिल रही ज़्यादातर ऊष्मा को अवशोषित (सोख) कर लेता है। हवा के मुकाबले पानी में ऊष्मा अवशोषित करने की क्षमता कहीं ज़्यादा होती है। जिसके चलते गुब्बारे के अन्दर का दबाव इतना ज़्यादा नहीं बढ़ता और वो नहीं फूटता।

लेकिन इस प्रयोग से जुड़े कई और भी सवाल हो सकते हैं। क्या पानी से भरा गुब्बारा तब तक नहीं फूटेगा जब तक कि सारा पानी वाष्प न बन जाए? क्या गुब्बारों के फूटे बिना पानी को इतना गर्म किया जा सकता है कि सारा-का-सारा पानी वाष्प बन जाए? अगर हाँ तो ऐसे में क्या होगा? इस प्रकिया में संघनन (condensation) की भी कुछ भूमिका होगी क्या? गुब्बारे के साइज़, गुण्वत्ता और मोटाई का प्रयोग के नतीजों पर कैसा असर होगा? अगर यह प्रयोग अलग-अलग जगहों व मौसमों में किया जाए तो क्या नतीजे जुदा होंगे?

वैसे ये फूला हुआ गुब्बारा है बड़ी मज़ेदार चीज़। खेल-खेल में ही कई प्रयोग किए जा सकते हैं। हवा भर कर बिना मुँह बाँधे छोड़ दो, वह रॉकेट की तरह भागने लगता है। सूखे बालों से रगड़कर दीवार से सटा दो तो चिपक जाता है।

तुम्हारे पत्र...

1.

जिसमें सिर्फ हवा भरी थी वह गुब्बारा तो तुरन्त फूट गया। पर जिसमें थोड़ा पानी भी था उसने काफी समय लिया। हमारी गलती यह हुई कि हमने टाइम नोट नहीं किया। लगभग तीन मिनट के बाद हमने टाइम देखना शुरू किया। गुब्बारा नीचे से काला होना शुरू हो गया था। धीमे-धीमे गुब्बारा छोटा होता मालूम हुआ। एक छेद से पानी की बूँदें निकलनी शुरू हुईं। पर गुब्बारा फूटा नहीं। फिर पानी की फुहार छूटी। करीबन छह मिनट बाद गुब्बारा फूटा।

- कन्या शाला, चिकोदरा, आनन्द, गुजरात, सातवीं के बच्चे

2.

एक सर हमारे स्कूल आए थे और चकमक दिया था। चकमक में पढ़ा तो सोचा मैं भी यह प्रयोग करूँ। यह एक मज़ेदार प्रयोग था। मैंने यह प्रयोग अपने घर पर किया। बहुत मज़ा आया। पहली बार मुझसे ठीक से बना नहीं। इस पर मेरे भैया देवेश दीक्षित, जो दसवीं में पढ़ते हैं, ने भी प्रयोग में साथ दिया। उस दिन हम दोनों ने बहुत से गुब्बारों पर यह काम किया तो मम्मी गुस्साने लगीं। लेकिन हमें तो मज़ा आ रहा था कि ऐसा क्यों हो रहा था कि पानी भरा गुब्बारा नहीं फूट रहा था और बिना पानीवाला तुरन्त फूट जा रहा था। मैंने पापा से पूछा तो बोले खुद पता लगाओ। ध्यान आया मैम ने कक्षा में बताया था। फिर मैंने किताब से पाठ पढ़ा तो थोड़ा समझा। फिर तब बात समझ में आई कि खाली गुब्बारे में केवल गैस है जो गरम करने पर चारों ओर ज़ोर से फैलती है लेकिन फैलने के लिए जगह नहीं है। इसलिए भीतर के गैस के दबाव से वह फूट जाता है। पानीवाला गुब्बारा गरम करने पर काफी देर बाद भी नहीं फूटा क्योंकि उसमें भरा पानी मोमबत्ती की गरमी को सोखता जाता है और गुब्बारा ठण्डा बना रहता है। और पानी के अणु पास-पास रहते हैं तो इनको फैलने में टाइम लगता है। थोड़ी देर बाद पानी गरम होने लगा था। फिर मैं डर गई कि कहीं फूट न जाए तो हाथ जल जाए और मम्मी डाँटने लगें, तो फेंक दिया। सण्डे को मैं फिर करूँगी और देखूँगी कि गुब्बारा फूटता है कि नहीं। लेकिन इतना समझ गई हूँ कि खाली गुब्बारा तुरन्त फूटता है और पानीवाला नहीं।

– संस्कृति दीक्षित, आठवीं, तथागत ज्ञानस्थली इंटर कालेज, अतर्रा, बान्दा, उत्तरप्रदेश

3.

जिस गुब्बारे में सिर्फ हवा थी वह तुरन्त ही फूट गया। दूसरे में हमने आधा पानी भरा था। मोमबत्ती पर रखने से उसकी निचली परत थोड़ी काली हुई। धीरे-धीरे पूरा नीचे का हिस्सा काला हो गया। 40 सेकेंड के बाद गुब्बारा फूट गया।

– मंथन शिक्षण केन्द्र, झिरि झालावाड़ के छठी और सातवीं के बच्चे।

4.

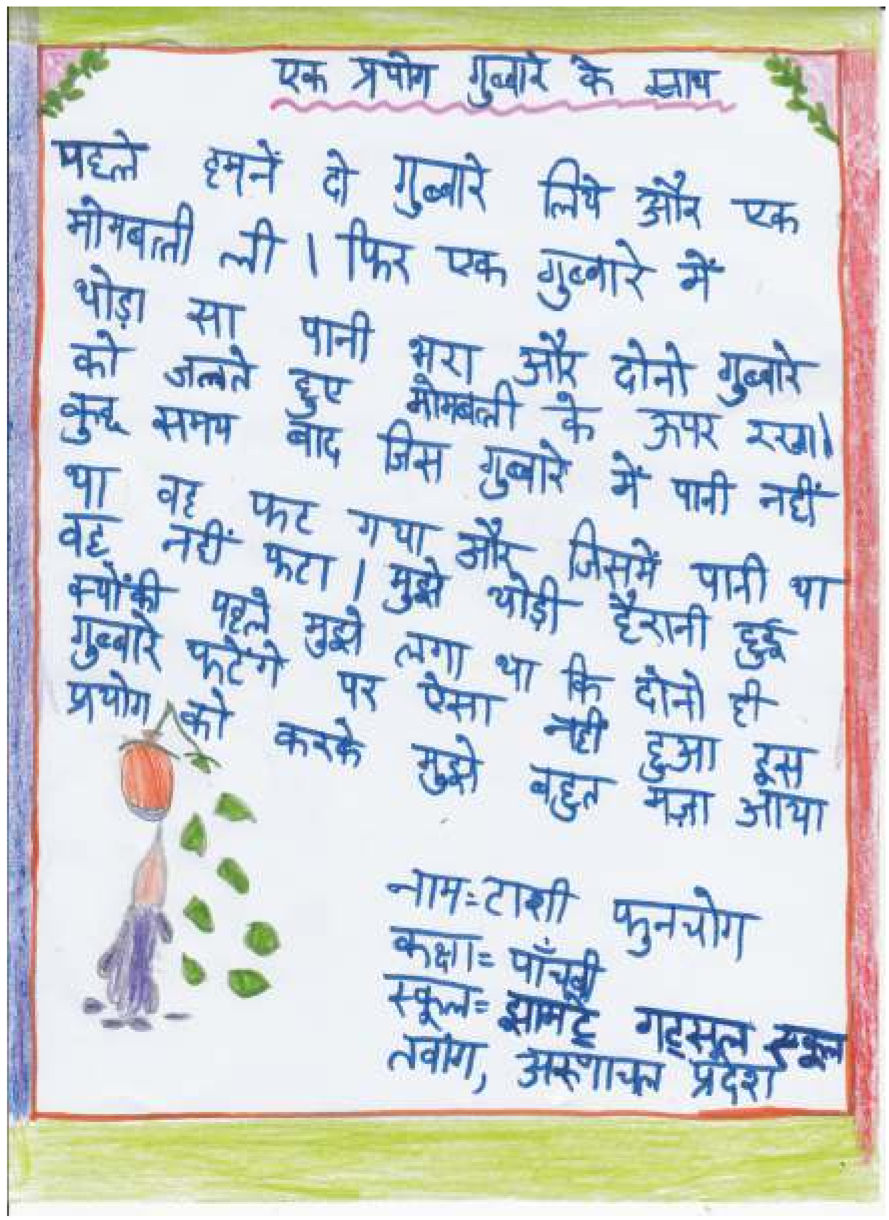

एक प्रयोग गुब्बारे के साथ

पहले हमनें दो गुब्बारे लिये और एक मोमबत्ती ली। फिर एक गुब्बारे में थोड़ा सा पानी भरा और दोनो गुब्बारे को जलते हुए मोमबत्ती के ऊपर रखा। कुछ समय बाद जिस गुब्बारे में पानी नहीं था वह फट गया और जिसमें पानी था वह नहीं फटा। मुझे थोड़ी हैरानी हुई क्योंकि पहले मुझे लगा था कि दोनो ही गुब्बारे फटेंगे पर ऐसा नहीं हुआ इस प्रयोग को करके मुझे बहुत मज़ा आया

नाम: टाशी फुनचोग
कक्षा: पाँचवी
स्कूल: झामटे गइसल स्कूल
तवांग, अरुणाचल प्रदेश

– इसी स्कूल से छिरिंग लाड्रोम, दावा छोड्रोन, दोरजी पांकी, लोबसंग डाड्रोन, लुंडता, रीनचीन, सोनम ल्हामो, सृजना सुब्बा की चिट्ठियाँ भी मिलीं।

5.

हम दो गुब्बारे लिए – एक लाल रंग, दूसरे सफेद रंग। लाल को फुलोए और सफेद को पानी डालकर फुलोए। फिर एक मोमबत्ती को जलाए। हवा वाला गुब्बारा आग के ऊपर रखते ही फूट गया। पानीवाला नहीं फूटा। सफेद गुब्बारा इसलिए नहीं फटा क्योंकि पानी आग में जल्दी गरम नहीं होता।

- नाज़िया बानो, पाँचवीं, शासकीय प्रथमिक शाला धरसीवा, रायपुर, छत्तीसगढ़

6.

पानीवाला गुब्बारा फूटने में अधिक समय ले रहा था। यह इसलिए हो रहा था क्योंकि पानीवाले गुब्बारे में अणु देरी से फैलते हैं।

- मुजीबुर, आठवीं, विश्वास स्कूल, गुड़गाँव, हरियाणा। इसी स्कूल के अंजलि, बृजभान, लखन, अंकित, संजीव, साजिश, रोहित, धीरज, रवि, मुकेश, संदीप, आशीष, शेरॉन ने भी अवलोकन भेजे।

7.

पानी से भरा गुब्बारा इसलिए नहीं फूटता क्योंकि उसे फूटने के लिए अत्यधिक ऊष्मा चाहिए। हवावाला गुब्बारा हवा के गर्म होने से तुरन्त ही फूट जाता है।

- आदित्य विश्वकर्मा, शासकीय हाई स्कूल बसुरिया नरसिंहपुर, मध्यप्रदेश

8.

आज कक्षा में पांडे सर गुब्बारे और मोमबत्ती लेकर आए। सर के साथ हमने चकमक में छपा प्रयोग किया। जिस गुब्बारे में पानी भरा था वह नहीं फूटा। मैंने घर जाकर एक पन्नी में पानी भर के यही प्रयोग किया। पानी भरा होने के कारण न पन्नी जली और न फूटी।

- अभिशान्त, पाँचवीं, प्राथमिक विद्यालय सेमरिया, कुशल नरेनी, बाँदा, उत्तरप्रदेश। यहीं से नूर मोहम्मद, रोशनी, सुमन कुमारी, ललिता और राहुल की भी चिट्ठियाँ मिलीं।

अगले माह की गतिविधि

इन दो चित्रों को गौर से देखो। पहला चित्र एक अस्पताल की हेल्प डेस्क का है।

दूसरा चित्र एक रिटायर्ड कर्मचारी की सेवा पुस्तिका का है।

9.

पानी गर्मी को सोख लेता है पर हवा में गर्मी सोखने की क्षमता ज़्यादा नहीं होती। इसलिए हवावाला गुब्बारा जल्दी फूट जाता है और पानीवाला बाद में।

- अनय अवस्थी, छठी, आनन्द विहार स्कूल, भोपाल। तनिष्क राठौर, खुशबू यादव, आदित्य अहिरवार, एस मदीहा खान, अर्पित लावनिया, आयुषि कुमार, शिक्षा कुशवाह, हिमाँशु गौर, समकित जैन, क्रिश जैन, साक्षी विश्वकर्मा ने भी प्रयोग कर अपने अवलोकन भेजे।

इन चित्रों के बारे में तुम क्या सोचते हो? अपनी राय हमें 14 जनवरी तक चकमक के पते पर भेज दो।

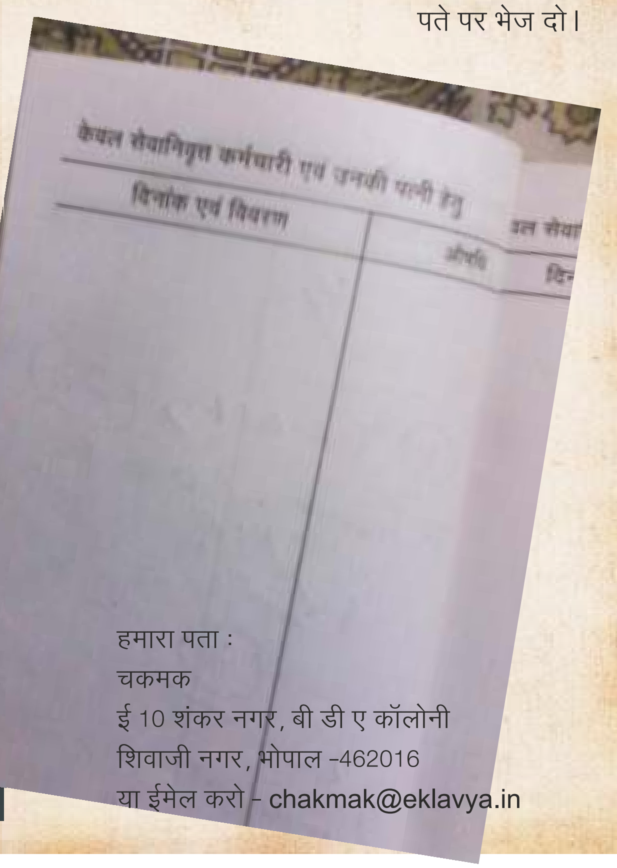

हमारा पता :
चकमक
ई 10 शंकर नगर, बी डी ए कॉलोनी
शिवाजी नगर, भोपाल -462016
या ईमेल करो - chakmak@eklavya.in

(कवर एक का शेष भाग)

मेरी भी आभा है इसमें

नागार्जुन

नए गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखण्ड आज जो दमक रहा है
मेरी भी आभा है इसमें

भीनी-भीनी खुशबूवाले
रंग-बिरंगे
यह जो इतने फूल खिले हैं
कल इनको मेरे प्राणों ने नहलाया था
कल इनको मेरे सपनों ने सहलाया था

पकी सुनहली फसलों से जो
अबकी यह खलिहान भर गया
मेरी रग-रग के शोणित की बूँदें इसमें मुस्काती हैं

नए गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखण्ड आज जो चमक रहा है
मेरी भी आभा है इसमें

शोणित - पसीना

दरजिन

यह जो चिड़िया है – हरिताभ
गुलाबी पाँवोंवाली
इतनी नन्ही
मानो चिटली उँगली के ही पंख उगे हों

फुदक रही है
यहाँ से वहाँ
आकुल आतुर
ढूँढ रही है
रुई, कपड़ा, कागज़, सींकें
ट्विट-ट्विट गाती
हिया जुड़ाती

मुझको है मालूम
कि उसने खोज लिए हैं
जुड़वाँ गहनों जैसे
पत्ते दो अमरूद के

जिनको सी कर
अणु-परमाणु बमों का उपहास उड़ाती
अपना नीड़ बनाएगी वह
प्रजापति की बेटी

ओ दरजिन
तुझे देखकर मेरी आँखें
भर-भर आती हैं
माँ की याद सताती है।

विनोद पदरज

(पिछले अंक में इस कविता की आखरी पंक्ति छूट गई थी। इसका हमें खेद है।)

एक ही हाण्डी के चटपटे अट्टे-बट्टे

दिलीप चिंचालकर

"देवजी हौ!"

बरसाती नाला पार कर टीले की चढ़ाई शुरू होते ही मैंने देवजी को आवाज़ लगाई। थोड़ा ऊपर आते ही कटहल की फुनगी और फूस की छत दिखाई देने लगी। गाय के गले में बँधी घण्टी और मुर्गे की बाँग सुनाई दी। जंगल-झाड़ियों में पाँच-सात किलोमीटर पैदल चलकर मैं डोंगरी पाड़े आ पहुँचा। यह महाराष्ट्र के पालघर ज़िले के डहाणू तालुके का वारली वनवासी इलाका है। मेरा दोस्त देवजी वारली वनवासी है।

"देवजी खूब भूख लगी है। झटपट कुछ खिलाओ।"

देवजी कुछ नहीं बोला। थोड़ा मुस्करा दिया। वह सब्ज़ियों की दुकान लगाए बैठा था। एक गोभी, थोड़े बैंगन, थोड़ा हरा धनिया, कुछ आलू-प्याज़-रतालू, दो ठो अजीब से कन्द और ढेरी भर सुरती पापड़ी फलियाँ। मैंने कहा, "अरे, यहाँ कौन तुमसे सब्ज़ी खरीदने आएगा? तुम्हारा पड़ोसी वनवासी भी तुमसे फर्लांग भर दूर रहता है और इतनी सब्ज़ी-भाजी वह भी उगा लेता होगा।"

देवजी कुछ नहीं बोला। अब उसने प्याज़ छीलकर उन्हें बीच में से थोड़ा-थोड़ा काट दिया। मैं समझ गया कि आज खाने में यही सब है। झुरमुट के पीछे से उसकी घरवाली जानकी नमूदार हुई और उसने मेरे हाथ में नीरा का तूम्बा थमा दिया। मतलब यह था कि अभी खाने में ज़रा देर है। तब तक धीरे-धीरे इसे गटको।

नीरा ताड़, खजूर या नारियल के तने के ऊपरी हिस्से से निकाला हुआ रस होता है। मीठा तो होता ही है पेट के लिए भी अच्छा होता है। मगर धूप चढ़ने के साथ यह थोड़ा गन्नाटा भी देने लगता है। मेरा माथा थोड़ा चकराने लगा। तब जानकी ने एक डोंगा लाकर चबूतरे पर रख दिया। उसमें कुछ पिसा-कुटा था। हरा-हरा और भूख जगानेवाली सुगन्ध से भरपूर। चखकर देखा तो बड़ा तीखा निकला। मगर स्वाद में अहाहा। उसमें हरा धनिया पड़ा था। लहसुन, अजवाइन, अदरख, नमक। और खूब मिर्चें थीं हरी-हरी।

गुजरात, महाराष्ट्र और मुम्बई से नीचे कोंकण पट्टी में जाड़ों में उकड़हाण्डू बड़े शौक से बनाया और खाया जाता है।

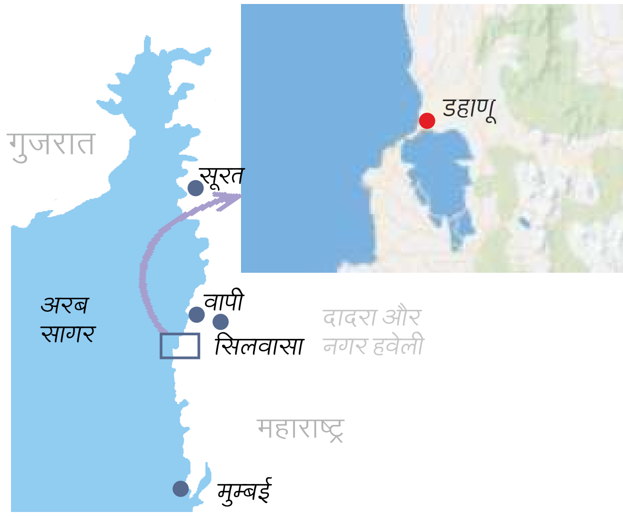

देवजी ने वह मसाला कटे हुए प्याज़ और बैंगनों में भर दिया। बाकी सारी कटी हुई चीज़ों को मसाला चुपड़कर मिट्टी की एक हाण्डी में भर दिया। बारिश में झोपड़ी के आसपास गुराड़ा नाम की खरपतवार उग आई थी। उसे ठूँसकर हाण्डी का मुँह बन्द कर दिया। फिर इस हाण्डी को जलते हुए कचरे के ढेर में उलटकर रख दिया। ज़रा-सी हवा करने पर सूखे पत्ते, नारियल के छिलके और पत्तों के डण्ठल चट-चटकर तेज़ी से जलने लगे। खासी आँच पैदा होने लगी। मगसीर (मार्गशीर्ष) के दिन ढले झुटपुटे की ठण्डक में यह आँच भली लग रही थी।

देवजी और जानकी वारली बोली में कुछ नुक्ताचीनी करने लगे। बीच-बीच में जानकी कुछ गाने लगती। वैसे भी पतली-ऊँची आवाज़ में उसका लहज़े में बोलना वनवासी गीत जैसा ही था। पौने घण्टे बाद देवजी ने राख के ढेर में से हाण्डी बाहर निकाली। मुँह से घास में दबाई दो फलियाँ मुझे चबाने के लिए दीं। मैंने हाँ में सिर हिलाया। अच्छी पकी हुई थीं। इसका अर्थ था कि भीतर का माल भी पक गया है। भाप निकलता और गज़ब की खुशबू बिखेरता वह मलीदा सबसे पहले मुझे एक तश्तरी में पेश किया गया। यह उबाड़ियू था।

मुझे इसका दूसरा नाम अधिक भाया – उकड़हाण्डू। यानी हाण्डी में उकड़ा (पकाया) हुआ कुछ। जो भी हो, यह लगता इतना ज़ायकेदार है कि मत पूछो! गर्मागर्म उकड़हाण्डू मुँह में भर लेने के बाद आप वैसे भी कुछ बोल नहीं पाएँगे। चकमक

न बोले तुम
न मैंने कुछ कहा ...

इन्द्राणी रॉय

भाषा... यह शब्द सुनकर तुम्हारे दिमाग में क्या आता है?

अगर कोई मुझसे पूछे तो मैं कहूँगी कि मेरे दिमाग में हिन्दी, मेवाड़ी, बुन्देलखण्डी या अँग्रेज़ी जैसी भाषाएँ आती हैं। भाषा से हम अपनी बात दूसरों तक पहुँचा सकते हैं और औरों की बात समझ सकते हैं। इसी तरह जो लोग बोल या सुन नहीं पाते वे साइन लैंग्वेज का इस्तेमाल कर बातचीत करते हैं।

पर कोई बिना बोले भी तो बहुत कुछ कह जाता है।

जैसे तुमने अपनी माँ को उनके जन्मदिन पर कुछ खास तोहफा दिया और उन्होंने कुछ न कहा। बस ज़रा-सा मुस्कराईं और उनकी आँखें भर आईं। और उनके बिना कुछ बोले तुम समझ गए कि माँ बहुत खुश हईं और उनका जी भर आया। या तुमने अपने छोटे भाई-बहन को बहुत डाँटा और वे मुँह फुलाकर एक कोने में जा बैठे। और तुम्हें पता चल गया कि उन्हें मनाना पड़ेगा नहीं तो वे कोने में ही मुँह फुलाकर बैठे रहेंगे।

यानी मुँह से कही बात के अलावा कुछ कहने के और भी तरीके हैं। कला की दुनिया में यह अकसर दिखता है। फिल्मों को ही ले लो। अब मान लो किसी फिल्म में दिखाया जा रहा है कि कोई पुरानी घटना किसी को याद आ रही है (इसे फिल्मों में फ्लैश बैक कहा जाता है)। तुम देखोगे कि अकसर वो घटना ब्लैक एण्ड वाइट या सीपिया टोन में दिखाई जाएगी। ऐसा तो नहीं है कि पुराने ज़माने में दुनिया रंगीन नहीं थी। पर फिल्मकार फिल्मों के ब्लैक एण्ड वाइट ज़माने की याद को इस्तेमाल करके अपनी बात तुम तक पहुँचाते हैं। यानी वे बता देते हैं कि यह पुराने दिनों की बात है। यह तकनीक इतनी प्रचलित है कि अब जब किसी फिल्म में रंगीन फ्लैश बैक दिखाया जाता है तो हमें यह समझने में थोड़ा वक्त लग सकता है कि यहाँ पुराने दिनों की बात की जा रही है।

किसी डरावनी फिल्म को याद करो। कोई डरावनी घटना जब होनेवाली होती है तो क्या-क्या होता है? कैमरा चरित्रों को इस तरह से दिखाता है जैसे उन्हें कोई छिपकर देख रहा हो।

ऐसे दृश्यों में बैकग्राउण्ड से आती आवाज़ पर ध्यान दो तो पाओगे कि कहीं दरवाज़ा खुलने की कींईईईईई आवाज़ आ रही है, तो कहीं ऐसा संगीत बज रहा होता है जो डर पैदा करता है।

ऐसे दृश्यों को अगर तुम कान बन्द करके देखो तो हो सकता है कि तुम्हें उतना डर न लगे।

यह समझ लेना ज़रूरी है कि फिल्मों में इन सब चीज़ों को दिखाने का कोई एक ही तरीका नहीं है। कुछ प्रचलित तरीके हैं जिनसे दर्शकों तक कुछ बातें बिना किसी संवाद के पहुँचा दी जाती हैं। यह इसलिए भी सम्भव है क्योंकि जब हम कोई फिल्म देखने जाते हैं तो अपनी कुछ धारणाएँ भी साथ लेकर जाते हैं। इन धारणाओं के आधार पर ही हम फिल्म के सन्देशों को समझते हैं। चक मक

धूप

रमेश तेलंग

लिए हाथ में फूल छड़ी।
आँगन में है धूप खड़ी।

झरने जैसी झरती है।
आँख-मिचौली करती है।

पर्वत पर चढ़ जाती है।
सागर पर इठलाती है।

दिन भर शोर मचाती है।
शाम ढले सो जाती है।

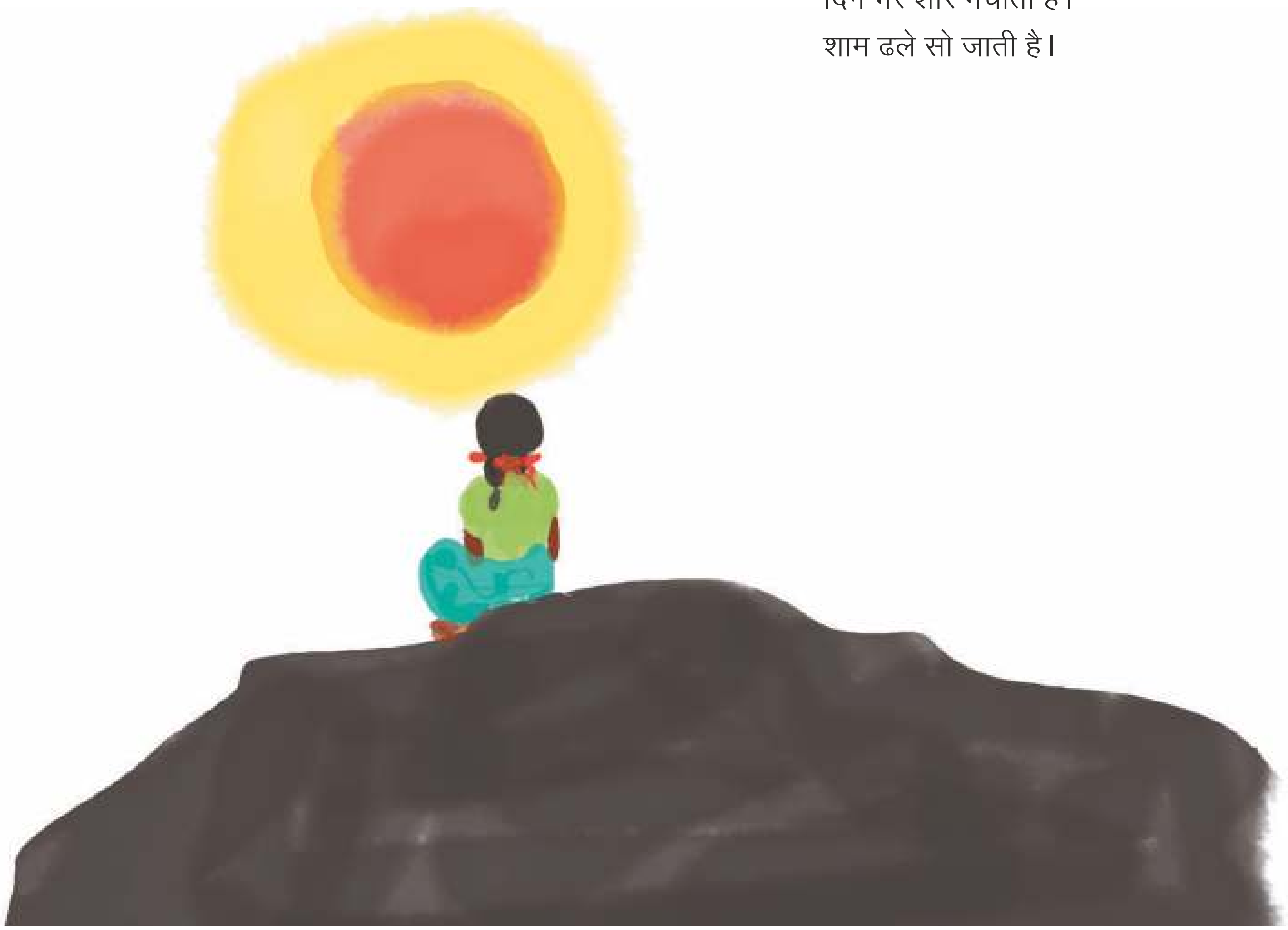

चित्रः चन्द्रमोहन कुलकर्णी

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/भोपाल/2015-17

चित्र पहेली

► बाएँ से दाएँ ▼ ऊपर से नीचे

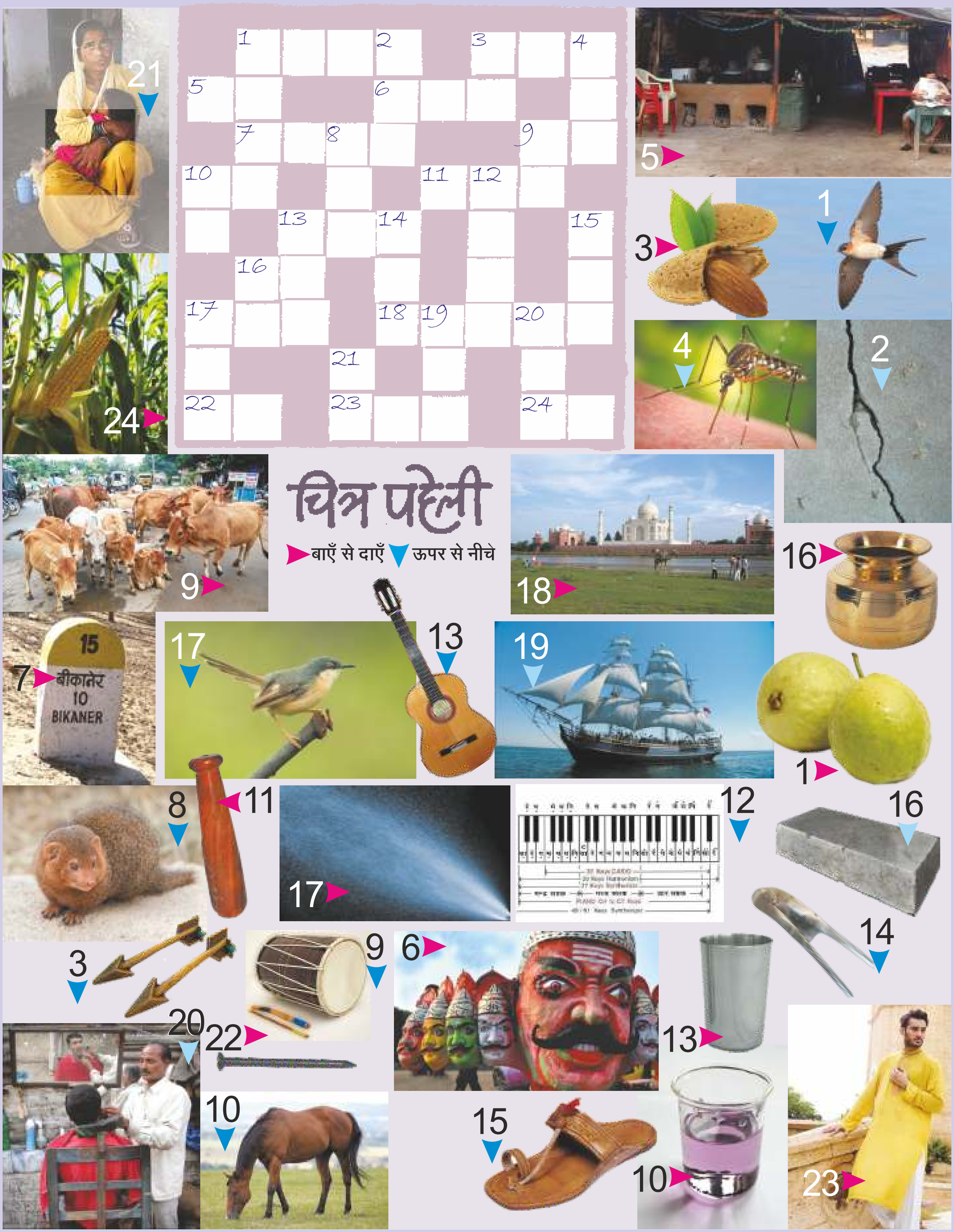

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल